वेदों में जीव–जन्तु वर्गीकरण एवं जैव विविधता की उपयोगिता

डॉ. अलका रॉय

जन्तु–विज्ञान–विभाग, आर.एस.एम. महाविद्यालय, धामपुर (बिजनौर)

वेद मानवमात्र के लिए प्रकाश–स्तम्भ और शक्ति के स्रोत हैं। विश्व को संस्कृति का ज्ञान देने का श्रेय वेदों को ही है। वेदों के विषय में मनु का यह कथन सारगर्भित है कि– 'सर्वज्ञान मयो हि सः' अर्थात वेदों में सभी विद्याओं के सूत्र विद्यमान हैं। चारों वेदों में जीव–जगत् से संबद्व पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है। इसमें जीवों के नाम, उनका वर्गीकरण, उनके गुण, कर्म और स्वभाव एवं उनकी उपयोगिता आदि का विवरण प्राप्त होता है। पशुपालन, पशु–संरक्षण, पशुसंर्वधन और पशुचिकित्सा आदि का भी उल्लेख है। जीवों को विभिन्न समूहों में वर्गीकृत किया गया है। जिस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिकों ने पूरे पशु–जगत् को बहुत ही वैज्ञानिक तरीके से वर्गीकृत किया है, जिसकी विज्ञान–जगत् में अधिक मान्यता है। उसी प्रकार हमारे प्राचीन वेद ग्रन्थों में पशु–पक्षी दोनों को सम्मिलित करते हुए इनके कई प्रकार के वर्गीकरण किए गए हैं। अर्थववेद में ग्राम्य पशुओं को विश्वरूप और विरूप बताते हुए एकरूप कहा गया है– 'ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपा विरूपाः सन्तो बहुधैकरूपाः' अर्थात ग्राम के जो अनेकों रूप–रंग वाले पशु बहुरूपता होने पर भी एक जैसे दिखलायी पड़ते हैं उनको भी प्रजा के साथ निवास करने वाले प्रजापालक प्राणदेव सबसे पहले मुक्त करें। शतपथ ब्राहमण में सात ग्राम्य और सात आख्य पशुओं का उल्लेख किया गया है– 'सात ग्राम्याः पशवः सप्तारण्याः'। वेदों में पशु–पक्षियों में रंग भेद से स्वभाव में अन्तर पशुओं की उपयोगिता, पशु–हिंसा का निषेध, पशु–संरक्षण, कृषिनाशक जीव–जन्तु आदि का पूर्ण उल्लेख मिलता है। पशु–पक्षियों की कतिपय विशेषताऐं भी वेदों में उल्लिखित की गयी हैं।

मानव मन एवं पर्यावरण शुद्धि पर वैदिक चिन्तन

डॉ. अनीता जैन

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत, दर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली (राजस्थान)

वेद हमें सत्य, धर्म, ज्ञान और अहिंसा का सदेंश देते हैं। ये सदेंश इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति एवं क्रिया शक्ति पर केन्द्रित हैं । मानव की वैज्ञानिक, औद्योगिक, कलात्मक एवं आत्मिक सभी प्रकार की प्रगति मूलतः पर्यावरण पर आश्रित है। यदि वे अपर्याप्त और प्रदूषित हों, तो मानव जाति का जीवित रह पाना संदिग्ध है। पर्यावरण रक्षा प्रकारान्तर से मानव के लिये आत्मरक्षा ही है। प्रदूषण रूपी दानव से मानव जीवन के संरक्षण का प्रश्न वर्तमान वैज्ञानिक युग का सर्वाधिक चर्चित प्रश्न है। वैदिक आर्य, आरोग्यता, संतति, वर्षा, विद्या, एवं पर्यावरण शुद्धि हेतु यज्ञों में विश्वास रखते थे। 'यज्ञ' वह विधि है जिसके द्वारा न केवल मानसिक एवं प्राकृतिक संतुलन बनाए रखा जा सकता है बल्कि जिसके द्वारा वायुमण्डल में ऑक्सीजन और कार्बनडाई–ऑक्साइड का सन्तुलन बना रहता है। सृष्टि रचना के मूल में निहित यह एक ऐसी केन्द्रीभूत प्रक्रिया थी, जिसने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को संचालित करने में मूल आधार का काम किया है। अतः उसे 'भुवनस्य–नाभिः'(यजु. 23/62) भी कहा गया है। वैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला है कि यज्ञ करने से वातावरण में विषैली गैसों का प्रतिषत घटता है। यज्ञ भस्म में फास्फोरस, पोटेषियम, कैल्षियम, मैग्निषियम, नाइट्रोजन आदि पाये जाते हैं जिससे पृथ्वी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। यज्ञ हमारे शारीरिक मानसिक एवं आत्मिक उन्नति का साधन हैं। मन ही सप्त होता से युक्त यज्ञ का विस्तार करता है। जिस प्रकार रथ की नाभि में तीलियां प्रतिष्ठित होती हैं, उसी प्रकार ऋक्, यजुष् एवं साम मन के अन्तर्गत ही प्रतिष्ठित होते हैं। पर्यावरण प्रदूषण से निर्मुक्ति हेतु शिवसंकल्प से अनुप्राणित मन की अपरिहार्यता एवं अक्षय

सुख हेतु 'मनोनिग्रह' की आवश्यकता पर बल देते हुये ऋग्वेद में भी कहा गया है कि – जो तुम्हारा मन भूतकाल की बातें सोचता हुआ और भविष्य की चिन्ता करता हुआ बहुत दूर तक चला गया है। यदि तुम अक्षय सुख चाहते हो तो उस चंचल मन को लौटाकर एक स्थान पर केन्द्रित करो। मनीषियों के चिन्तनानुसार 'मनोनिग्रह' संजीवनी शक्ति के समान मानव जीवन का विकास करता है। अतः सम्प्रति वैदिक वाङ्मय के समक्ष यही चुनौती है कि वह विश्वकल्याण हेतु सुसंस्कृत मानव का सृजन करे। यह तभी संभव है जब प्रत्येक मानव मन शिवसंकल्प से अभिषिक्त व अभिप्रेरित होकर कार्य करें।

यजुर्वेदीय ब्राह्मणों में कालतत्त्व–निरूपणार्थ प्रयुक्त मानवीकरण

डॉ. अपर्णा धीर

संयोजिका, परियोजना विभाग, रा.सं.सं, दिल्ली एवं संयुक्त सचिव, वेव्स

'सर्वज्ञानमयो हि सः' (मनु. 2/7) सर्वथा सार्थक है। वेदों का सर्वविद्यानिधानत्व वैदिक शब्दों की अनेकार्थकता पर आधारित है। वैदिक मन्त्रों को सहृदयों द्वारा ग्राह्य बनाने हेतु वैदिक मनीषियों ने विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया। जैसे– प्रतीक, संवाद, प्रश्नोत्तर, आख्यान, निवर्चन, अलंकार इत्यादि। आलङ्कारिक वर्णन में मानवीकरण रूपी सोपान प्रायः वेद मन्त्रों में नज़र आता है। मानवीकरण की यह विधा कालतत्त्वों के निरूपणार्थ यजुर्वेदीय ब्राह्मणों में दर्शनीय है। यथा– संवत्सर को प्रजापति मानकर अनेक अङ्गों वाला कहा है (श. ब्रा. 4/1/1/15, 8/4/1/11), षड् ऋतुओं की मानव–शरीर के अङ्ग के रूप में कल्पना (श. ब्रा. 6/1/2/17–18), नक्षत्रों की आकृति प्रजापति स्वरूप मानकर चित्रा को उसका सिर, हस्त को हाथ, स्वाती हृदय, विशाखा जंघा तथा अनुराधा को पाद बताया है (तै. ब्रा. 1/5/2/2)। इसी दृष्टि से अन्य कालतत्त्वों की चर्चा भी प्रस्तुत शोध–पत्र में की जायेगी।

वेदों में वर्णित पञ्चमहाभूत (संरक्षण के उपाय)

डॉ. अर्चना कुमारी दुबे

असोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत, वनस्थली विद्यापीठ (राजस्थान)

वैदिक संहिताओं के अन्तर्गत प्रश्नोंपनिषद् में आकाश, वायु, अग्नि, आप और पृथिवी यह क्रम प्राप्त होता है। साथ ही इनकी तन्मात्राओं का भी सम्मुल्लेख किया गया है। भगवद्गीता में भगवान श्री कृष्ण ने भी पृथिवी आदि पंचमहाभूतों का उल्लेख करते हुए कहा है– 'भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च'। पर्यावरण के शोधन में पृथिवी का पर्याप्त योगदान है। अर्थर्ववेद में ही भूमि के सरंक्षण हेतु कहा गया है– 'हे भूमि! तेरा जो भी भाग में खोदूँ, वह पुनः शीघ्र उग आवे। हे खोदने योग्य! मैं न तेरे मर्मस्थल पर चोट करूं और न तेरे हृदय को पीड़ित करूं। जल एक बहुमूल्य राष्ट्रीय परिसम्पति है। प्राणीजगत् अथवा वनस्पतिजगत् दोनों के लिए जल का महत्व है। अतः जल की शुद्धि हेतु अथर्ववेद में कहा गया है– 'जिस भूमि पर निरन्तर बहने वाले जल परिचर के समान घूमते है, वह भूमि समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली है। ऋग्वेद में ऊर्जा अर्थात् अग्नि संरक्षण हेतु कहा गया है– 'सर्वसंचालक सूर्य आकाशीय उपद्रवों से हमारी रक्षा करें, वायु (विद्युत) अन्तरिक्ष के उपद्रवों से रक्षा करें और अग्नि पृथ्वी पर होने वाले उपद्रवों से हमारी रक्षा करें। वायु का पर्यावरण तथा हमारे जीवन से सीधा सम्बन्ध है। शुद्ध वायु (भेषजवात) हृदय के लिए शान्ति दायक एवं सुखकारक होती है और आयु को भी बढ़ाती है। आकाश के प्रदूषण की रक्षा शब्द के कोलाहल की रोकथाम से की जा सकती है। अतः निष्कर्षतया कहा जा सकता है कि पञ्चमहाभूतों का संरक्षण ही पर्यावरण का संरक्षण है।

मानव एवं प्रकृति : जैन–दर्शन के सन्दर्भ में

डॉ. अर्चना रानी दुबे

पोस्ट डॉक्टरल फेलो, विशिष्ट संस्कृताध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्ववि., दिल्ली

भारतीय दृष्टि में मानव एवं प्रकृति का मातृ एवं पुत्र (पालक एवं पालित) का सम्बन्ध है। प्रकृति मनुष्य की भोग्य न होकर बल्कि उसकी पालक है। मानव की सम्पूर्ण भौतिक इच्छाएँ प्रकृति ही पूरी करती है। जिसे हम भौतिक विकास कहते हैं, उसका पूरा आधार प्रकृति ही है। प्रकृति मनुष्य की एकमात्र पूँजी है। हम अपने चारों और दृष्टिपात करें तो पता चलेगा कि हमारे उपयोग में आने वाली एक भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसका मूल स्रोत प्रकृति न हो। हमारे वस्त्र कपास के पौधों से प्राप्त हुए हैं, तो मकान की दीवारें पृथ्वी तथा जल के संयोग से अग्नि की सहायता से बनी हैं। वायु के योगदान का महत्त्व आँकना और भी कठिन है क्योंकि उसके बिना हम एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते। प्रकृति का यह उपकार प्रकृति को हमारी संरक्षिका बना देता है। प्रकृति हमारी दासी नहीं है।

अहिंसा जैनाचार का केन्द्रीय तत्त्व है। अहिंसा के पालन हेतु मानव का सभी जीवों के साथ सामंजस्यपूर्ण व्यवहार अपेक्षित है। अहिंसा के मूल में मानव एवं प्रकृति के अन्तः सम्बन्ध को समझा जा सकता है। जैन धर्म प्रकृति से खिलवाड़ रोकने के लिए अहिंसा के सिद्धान्त को प्रस्तुत करता है। जैनागमों में षट्कायिक जीवों की हिंसा से विरत रहने का उपदेश दिया गया है। जैनमत के अनुसार सभी जीवों का प्रकृति से गहरा सम्बन्ध है। वे एक दूसरे से अनुस्यूत हैं, अतः पर्यावरण की सुरक्षा में भी मिलजुल कर काम करते हैं। उनमें किसी भी प्रकार की हिंसा से पर्यावरण स्खलित होता है। इस प्रकार अहिंसा धर्म के पालन के द्वारा जैन दर्शन प्रकृति के साथ मानव के संतुलन की स्थापना करता है। प्रस्तुत शोध–पत्र का यही मौख्य है।

प्रकृति की सर्वोत्तम कृति मानव

डॉ. अरुणा शुक्ला

असिस्टेंट प्रोफेसर संस्कृत विभाग, बी. एल. एम. गर्ल्ज़ कॉलेज, नवाँशहर (पंजाब)

साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने विश्व–ब्रह्माण्ड में एक शाश्वत–व्यवस्था की अनुभूति की थी, जिसे उन्होंने 'ऋत' की संज्ञा दी। ऋत ही सबका संचालन एवं नियन्त्रण करता है। इस ऋत के अन्तर्गत कई तत्त्व हैं जो सृष्टि–प्रक्रिया का शाश्वत–संचालन करते हैं। देखने में ये पृथक्–पृथक् प्रतीत होते हैं फिर भी इनका परस्पर सापेक्ष सम्बन्ध है। सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथिवी, जल, वायु, अग्नि आदि जितने भी देवतत्त्व हैं वे सभी सृष्टि–प्रक्रिया रूप में यज्ञ के सम्पादन में लगे हैं। सृष्टि का प्रारंभ कहां से हुआ, किस प्रकार ये नित्य प्रवहमान है तथा किस समय तक चलती रहेगी– ये ऐसे अनेक शाश्वत प्रश्न हैं जिनका वैदिक ऋषियों द्वारा चिन्तन और उनका समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। सृष्टि–प्रक्रिया के प्रारंभ और अन्त के मध्य छह प्रकार के भावों की सत्ता आचार्य वार्ष्यायणि द्वारा स्वीकार की गई है। जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते, अपक्षीयते, विनश्यति तक की यात्रा तय करने वाले पार्थिव पदार्थों के भी कुछ आधारभूत तत्त्व हैं जो कल्याणकारी प्रत्येक पदार्थ के साथ जुड़े हुए हैं। इन्हीं को देवतत्त्व माना गया है। इसके अतिरिक्त सृष्टि–प्रक्रिया को शाश्वत रूप में प्रवहमान रखने में सहायक दो तत्त्व योषा–वृषा रूप में बताए गए हैं और ये योषा–वृषा रूप देवतत्त्व ही अण्डज, पिण्डज, उष्मज, उद्भिज – जितने भी पार्थिव जीव हैं उनमें शाश्वत रूप से गतिमान हैं।

इसी में जन्म – अस्तित्त्व – विपरिणमन – वर्धन – अपक्षय – विनाश रूप षड्भावविकार सदैव सक्रिय रहते हैं। प्रकृति के प्रत्येक घटक में योषा–वृषा रूप दो तत्त्वों की सक्रियता विद्यमान है। मानव–प्रकृति के परस्पर सम्बन्धों की चर्चा और उसके व्यवहारिक पक्ष के साथ–साथ पुरुषार्थ–चतुष्टय के द्वारा सुनीति के मार्ग पर चलकर अंतिम ध्येय मोक्ष की यात्रा तय करने की चर्चा की गई है।

मानव का अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ होना मानवोचित गुणों के कारण ही माना जाता है। जैसे सूर्य का धर्म समस्त भूमण्डल पर प्रकाश बिखेरना एवं उष्णता प्रदान करना है। वैसे ही मानव का धर्म मानवता है। मानवता वह धारणा है जिससे मानव–मात्र की शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक उन्नति के साथ–साथ समाज में परस्पर प्रेम, सद्भाव, सुख, शान्ति, नियम, अनुशासन तथा व्यवस्था स्थापित हो और प्रत्येक राष्ट्र बौद्धिक तथा भौतिक उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो, ज्ञान–विज्ञान का प्रसार हो, यही सत्यं शिवम् सुन्दरम् का समन्वय अभीष्ट होना चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता में भी मानव के दिव्यगुणों का वर्णन करते हुए कहा है कि भय का सर्वथा अभाव, अन्तःकरण की निर्मलता, तत्त्व–ज्ञान, दृढ़ ध्यानयोग, सात्त्विक दान, इन्द्रियों का दमन, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, मन वाणी और शरीर से किसी को कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण, क्रोध न करना, त्याग करना, प्राणियों पर दया इत्यादि – ये दैवी गुण हैं। इन्हीं मानवीय गुणों के कारण ही मानव को प्रकृति की सर्वोत्तम कृति कहा गया है। प्रकृति अर्थात् प्रकृष्ट कृति के मूक तत्त्वों को व्याख्यायित करने वाला एकमात्र मानव ही है। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का सम्यक् प्रकार से पालन करने के कारण मनुष्य प्रकृति का सर्वोत्तम प्राणी बन गया जिसके विषय में महाभारत कहती है– 'नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्'।

Human Ecology in *Prashnopanishad* and Modern Science

Mr. Arvind Kumar

Research Scholar, Jawaharlal Nehru University, New Delhi

Vedic literature is the starting point of human intellectual tradition. In Vedas, there are so many different subjects can be find *i.e.* main cause of the universal creation, the real situation of man in the universe, an omnipresent power which exists in all the objects, ultimate goal of human life etc. Ecological System is also discussed widely in many *suktas* of *Atharveda*. Where this truth can be raised that what is the relation between man and nature? What is the main cause by which all these natural objects as well as man are able to survive in this universe? In this context, *Prashnopanishad*, says that '*rayim c pranam c*' means there are two main aspects consist in all the living and nonliving things. *Pra*n*a* is related to *uttarayana,* s*uklapaksa* and day-time. *Rayi* is related to *dakshinayana, krishnapaksa* and night. Modern physics also agree with this *upanishadic* thought. Albert Einstein, Werner Heisenberg, Paul Dirac, Erwin Schrodinger etc concluded in their equations that consciousness is the main aspect of universe. The creation and survival of the universe is based on consciousness which is pronounced as *prana* in *upani*sh*ads*. *Pr*an*a* is also the leading point of ecological system. Although it remains in all parts of this system then man is also a part of it. So both man and nature complement to each other. One can't survive without other. Modern physics also concluded this fact. So a parallel discussion of ecology in *upnishadic* thought and modern science is the motto of this paper.

Man and Nature Interface as presented in Taittiriya Aaranyaka

Dr. A. R. Tripathi
10/58, Indira Nagar, Lucknow (U.P.)

Nature comprising matter and energy sustains all living organisms including man. All organisms are interconnected and inter-dependent, and together with non-living components of nature they constitute what we generally refer to as an ecosystem of which man too is an integral part. His survival depends on nature and other organisms of the ecosystem. The entire functioning of the ecosystem depends, in ultimate analysis, on matter and energy. This whole idea has been conceived very well in *Taittiraya Aaranyaka*. As per the text, the inorganic matter is the source of all organic matters existing in this universe. The different elements involved in the process of the creation were considered sacred and were revered. The sages also realized that the solar energy is the main source of all types of life on the earth and rendered maximum prayers to Sun god. The gods like *Agni, Parjanya, Vayu* and *Prithivi* were also considered important as they provide necessary ingredients for the growth of the plants. Man depends on plants for food, clothing, shelter, maintenance of the environment and natural beauty. Ta. Ar. refers the names of many plants which are mainly used for different rituals. There are also references of medicinal plants. The sages pray gods to provide medicinal plants for keeping human beings healthy. The solar energy trapped by the plants is converted into potential energy of food materials which maintain all types of animal life and drives the ecosystem processes. This flow of energy is unidirectional. On the other hand, the inorganic substances present in the habitat which represent the matter keep on circulating in the system. This complex exchange of matter and energy in the ecosystem is very important for the organisms including man to maintain themselves in the system.

Energy is needed for all types of motions and keeps the life cycle moving. Since the energy released from the ecosystem is dissipated, there is constant loss of energy as it moves from the organisms of lower tropic level (e.g. green plants) to successive higher tropic level (e.g. animals). It is clear that in order to save the life on this planet earth it is mandatory to conserve all types of energies and habitat which provides the matter. This fact has been realized correctly by the composer of Ta. Ar. They also noticed the inter-dependence of different elements present in the habitat and worshipped them for the welfare of the human being.

वैदिक 'ऋत' का आधुनिक सन्दर्भ में विवेचन

श्री अशोक कुमार
पीएच.डी. शोधच्छात्र (संस्कृत), विशिष्ट संस्कृताध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्ववि., दिल्ली

आचार्य यास्क ने 'ऋत' का अर्थ 'ऋतमित्युदकनाम एवं सत्यं वा यज्ञं वा' (निरु. 2/25, 4/19) अर्थात् उदक, सत्य एवं यज्ञ बताया है। आचार्य सायण ने 'ऋत' का अर्थ गति, स्तोत्र एवं कर्मफल माना है। महर्षि अरविन्द ने 'ऋत' को सदाचार का मापदण्ड माना है। उनका मत है कि सब

वस्तुओं का सारभूत पदार्थ 'ऋत' है, भौतिक से आध्यात्मिक रूप में परिवर्तन का कारण 'ऋत' ही है। महर्षि अरविन्द का मत है कि 'ऋत' से सूर्य, चन्द्र आदि का नियम दिखाई देता है, किन्तु वस्तुतः यह आचरण का नियम है। पाश्चात्य भाष्यकर 'ग्रिफिथ' ने 'ऋत' शब्द का अर्थ शाश्वत विधान (इंटरनल लॉ) अथवा पवित्र नियम (होली आर्डर) किया है। डॉ. मंगलदेव 'शास्त्री' के मतानुसार 'ऋत' एवं 'सत्य' के सिद्धान्त का अभिप्राय है– 'सारे विश्वप्रपंच में व्याप्त नैतिक आधार'। सृष्टि के आदि में सर्वप्रथम 'ऋत' की ही उत्पत्ति हुई थी (ऋ. 10/190), जो संसार के विविध रूपों और कार्यों में समन्वय स्थापित करता था। वस्तुतः विश्व में प्रतिष्ठा, नियमन, व्यवस्था और रचना का आधार तत्त्व 'ऋत' ही है। इस तरह 'ऋत' का अर्थ है कारण सत्ता, जो सत्यभूत ब्रह्म है। सभी देवताओं का सम्बन्ध 'ऋत' अर्थात् विश्व की नैतिक एवं भौतिक व्यवस्था से माना गया है।

आधुनिक काल में वैदिक 'ऋत' का मानव–जगत् एवं प्राकृतिक–जगत् के लिए बहुत महत्त्व है। मानव–जगत् में 'ऋत' उन नैतिक मूल्यों एवं आदर्शों का अधिष्ठाता है जो जीवन के प्रेरक है और जिन पर समाज प्रतिष्ठित है। आधुनिक काल में 'ऋत' के मार्ग का अनुसरण करने से मानव जगत् में सुख, समृद्धि, एकता, समानता, सहृदयता, लोककल्याण की भावना, विश्वबन्धुत्व, विश्व की उन्नति इत्यादि संभव है। यजुर्वेद (36/18) में समस्त प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखने की भावना व्यक्त की गयी है। 'अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या' (अथर्व. 3/30/5) अर्थात् एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के साथ ऐसा व्यवहार करे, जैसे गाय अपने नव–जात वत्स (बछड़े) के साथ करती है। परस्पर एक–दूसरे के कल्याण एवं रक्षा के लिए तत्पर रहना ही लोकाभ्युदय का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' के यह सिद्धान्त नैतिक मूल्यों का आधार स्तम्भ है। आधुनिक काल में 'ऋत' के मार्ग का अनुसरण करने से सभी प्रकार के दुःखों का अन्त संभव है। यही इस शोध–पत्र का प्रतिपाद्य है।

वैदिक देवता एवं प्रकृति 'एक ही दिव्य चेतन–शक्ति के प्रतीक'

श्री अविनाश पाण्डेय

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली

ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में इस तथ्य के स्पष्ट प्रमाण है कि प्रकृति के विविध अभिरुपों में एक ही दिव्य–शक्ति की अभिव्यक्ति है। जिनकी आश्रय के वैभिन्न्य के कारण नाम–भेद से अनेक रुपों में स्तुति की गई है। ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ–सूक्त (10/121) में हिरण्यगर्भ को संसार का सर्वप्रथम जनक, सर्वशक्तिमान् तथा सम्पूर्ण देवों का एकमात्र अधिष्ठाता कहा गया है– 'हिरण्यगर्भः समवर्ततााग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्'। वस्तुतः वैदिक–काल में उस असीम एवं विविधरूपों में सर्वव्यापक तत्त्व की स्पष्ट परिभाषा देने की उत्सुकता में हमारे वैदिक मनीषियों एवं कवियों ने अपनी प्रज्ञा के अनुसार कई रुपों में कल्पना की। तत्कालीन प्रकृति एवं मानव में जो सामंजस्य था, वही वर्तमान समाज में भी स्थापित हो इस शुभकामना से यह शोधपत्र उपन्यस्त किया गया है।

मानव और प्रकृति पर वैदिक विचार : आधुनिक सन्दर्भ में

डॉ. बबीता शर्मा

परियोजना प्रबन्धक, दयालबाग, आगरा, (उ. प्र.)

मानव के चारों ओर फैला हुआ वातावरण जिसका मानव प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षतः अनिवार्यरूपेण उपभोग करता है वह है 'प्रकृति'। प्रकृति के अन्तर्गत सभी तत्त्व आकाश, जल, अग्नि, ऋतुएं, पर्वत, नदियाँ, वृक्ष, वनस्पति, जीव–जन्तु, ग्रह, नक्षत्र, दिशाएं एक प्रकार से अखिल ब्रह्माण्ड ही समाहित है। प्रकृति के ये समस्त तत्त्व मानव जीवन को पूर्णतया प्रभावित करते हैं। इसके साथ ही प्रकृति भी

मानवीय कृत्यों से प्रभावित होती है। अतः मानव तथा प्रकृति अन्योन्याश्रित रूपेण सम्बद्ध हो जाते हैं। दार्शनिक दृष्टि से भी पुरुष एवं प्रकृति एक दूसरे के पूरक हैं। प्रकृति भोग्या है, उसका संसर्ग पाकर पुरुष भोक्ता बन गया है। वैदिक ऋषियों ने सदैव प्रकृति को देव तुल्य मानकर उसकी आराधना–साधना की है। नित्यक्रिया में प्रातःकाल उठने पर प्रत्येक आस्थावान् मनुष्य आज भी 'समुद्रवसने देवि पर्वत स्तन मण्डले। विष्णुपत्नि! नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व में' का पाठ करता हुआ पृथ्वी को माता मानकर उसके चरण स्पर्श करने के पश्चात् ही पृथ्वी पर अपना चरण रखता है। 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या' आज भी हम इसी वैदिक भावना से अभिभूत है। समस्त प्राकृतिक तत्त्व– अग्नि, मरुत, पर्जनय, वरुण, सोम, सविता, पृथिवी, नदियाँ, पर्वत, वृक्ष इत्यादि वैदिकों के पूजनीय रहें हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक ऋषियों ने आदिकाल में समस्त प्रकृति के प्रति जो देवत्व की भावना समाहित की, उसका कारण मानव तथा प्रकृति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध ही था। इसीलिए वैदिक ऋषियों ने इन्हीं प्राकृतिक देवताओं की प्रसन्नता तथा इनसे मानव–कल्याणार्थ अनेकशः स्तुतियों का विधान किया। वेदों में प्रकृति तथा मानव का तभी से अविभाज्य सम्बन्ध है जब से मानव इस धरा पर अवतीर्ण है। प्रकृति के विभिन्न तत्त्व तथा मानव अन्योन्याश्रित होकर पृथ्वी पर सन्तुलन बनाये हुए हैं। यही प्रकृति का अनुशासन है। इस अनुशासन में किसी प्रकार का अवांछनीय परिवर्तन इस सन्तुलन को बिगाड़ देता है, जो सम्पूर्ण विश्व के लिए घातक सिद्ध होता है।

जगत् कारण रूप प्रकाश की अवधारणा : श्वेताश्वतर–उपनिषद् शांकरभाष्य के विशेष सन्दर्भ में

श्री भोला नाथ

एम. फिल्. शोधच्छात्र, विशिष्ट संस्कृताध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्ववि., दिल्ली

वैदिक ऋषियों ने जगत् के कारण के सम्बन्ध में सर्वप्रथम विचार किया है। जिनका उद्गार मन्त्रों के रूप में उपनिषदों में दिखायी देता है। उपनिषद् में दर्शन से सम्बन्धित सभी विषयों पर सूक्ष्मता से विचार किया गया है। जगत् के कारण के सम्बन्ध में सभी दर्शनों का एक मत है कि जगत् का कारण अद्वैत है। वह अद्वैत तत्व आत्मन्, ब्राह्मन्, ईश्वर आदि नामों से जाना जाता है। यह तत्व सर्वोत्कृष्ट कारण होते हुए भी अकारण है क्योंकि श्वेताश्वतरोपनिषद् के अनुसार जगत् का मूल कारण ब्राह्मन् की स्वतन्त्राशक्ति है। उसी शक्ति से जगत् की सृष्टि होती है। यह शक्ति सत्व, रजस् और तमस् रूपा है। जिसे पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनों नामों से कहा गया है। रजोगुण क्रियाशील होने के कारण ब्रह्मा शब्द से वाच्य है। सत्वगुण प्रकाशक होने से विष्णु का प्रतीक है। वहीं तमोगुण महेश का प्रतीक है। ब्रह्मन् की ये तीन मूल शक्तियाँ प्रकृति से पृथक नहीं है। प्रकृति में ही कार्य करने की सामर्थ्य पायी जाती हैं किन्तु अचेतन होने से वह सृष्टि कार्य नहीं कर सकती है। सृष्टि कार्य के लिए प्रकृति पुरुष पर निर्भर रहती है। इसलिए पुरुष अर्थात् चेतन तत्व जिसे उपनिषद् में ब्रह्मन् कहा गया है। इस ब्रह्मन् को जगत् का मूल कारण कहा गया है। इस ब्रह्मन् तत्व को श्वेताश्वतरोपनिषद् में अनेक स्थानों पर देव, आदित्यवर्ण और अग्निवर्ण से अभिहित किया गया है। अतः कहा जा सकता है कि जगत् का मूल तत्व प्रकाश स्वरूप है तथा प्रकाश स्वरूप ब्राह्मन् अपनी ही भित्ति पर जगत् का प्रक्षेपण करता है– 'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति'।

Prakriti-Nature : An Analysis of Vedic & Scientific Views

Prof. Bhu Dev Sharma
Professor of Mathematics, Jaypee Institute of Information Technology, Noida

There are some major fundamental questions that have been asked perennially. Nature or Prakriti is one such major theme. Some in-depth understanding of 'Prakriti & Purush' is found in Rig-Veda and Yajur-Veda. Sankhya system that rests on the exploration of these concepts and presents a very thorough explanation of Prakriti as an instrument for achieving perfection of Man. In Srimad Bhagvat Gita, Bhagwan Krishna too presents Prakirti in a broader context of state of knowledge-or Jnan as such. The field of all sciences, particularly physical sciences has also been Nature. The methods of science have been different, but quite intense. This presentation will briefly present the outlines of the two systems and will establish the convergence of the two views.

गीता में प्रकृति चिन्तन

डॉ. ब्रह्मानन्द पाठक
लखनऊ, (उ. प्र.)

प्रकृति अनुराग और प्रकृति संरक्षण की चिरन्तन धारा है, भारतीय संस्कृति। प्रकृति अनुराग हमारी पुरातन संस्कृति में पूर्णतः समाविष्ट है। प्रकृति वो शाश्वत सत्य है, जिसकी पृथक् सत्ता की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मानव को प्रकृति से अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि सृष्टि–रचना के मानव और प्रकृति दो पृथक् पहलू हैं। इसलिए भारतीय दार्शनिकों ने प्रकृति के प्रत्येक स्वरूप को देवतुल्य मानकर स्तुति किया है। गीता में प्रकृति को सृष्टि का उपादान कारण बताया गया है। प्रकृति के प्रत्येक कण–कण में सृष्टिकर्ता (ब्रह्मा) समाये हुए हैं। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है कि 'मम योनिर्महद्ब्रह्म' अर्थात् योनि के रूप में सम्पूर्ण प्राणियों का उत्पन्नकर्ता मैं हूँ। साथ ही साथ भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि सब प्राणियों का आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि प्रकृति में जितने भी जैव–अजैव तत्त्व हैं, उनमें मेरा ही वास है। इस प्रकार प्रकृति परमेश्वर से भिन्न नहीं है। प्रस्तुत शोधपत्र में गीता में प्रकृति चिन्तन के विषय में सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

Adjustments of Humans In The Context of Nature: Vedic View

Dr. C L Prabhakar
President, WAVES, Bangalore Chapter

We have the mention of what nature is and the relationship that a Man holds unto it. There are adjustments to be done such that man lives for ten happy decades of Life.The adjustments that man has to make himself comfortable for hundred *Vasanta*s or *Sarad*s are several which the Veda mantras do indicate. The climate does not remain the same everywhere in the globe. The chief factor for that are the atmosphere and other condition like time, sun, moon, star sand many. Due to that only, whole adjustments and successful completion of life occurs. In *Purusha sukta* of RV, it is stated that 'Sacrifice is created by sacrifice'. The man aspires and bestows a prayer that the nature must be peaceful. The

popular mantra is soliciting *shanti* to earth, mid-air, the heavens, the *disah*, *avantara disas*, *agni*, *vayu*, *candra*, *nakshatrani*, *apah*, *oshadhayah*, *gauh*, *asva* (horse), *vanaspati*, *oshadhayah*, the various plants and herbs, the four and further subdivisions of the castes. These form the contents of nature and life. It is interesting, a prayer that the peace system should itself be peaceful. In addition to that the other contents of Nature like oceans, the rivers and other water containers (*samudra, nadyah*) etc need remain at their limitations and normal flow be the healthy feature to all of them and so on.

Man is a part of the nature and therefore the deities who govern the nature are appeased. In other words, the nature is deified into different energies and powers such that they coherently work for the run of Universe, time and safety of the people and others. As man experiences *upadravas* even the natural objects undergo changes up and down.

Man has to adjust with the odd circumstances.This is message in all the Vedas. Balancing of the same is done through *upasana* systems which are remedy procedures to obtain safety from the nature- disturbances. The suktas of Veda like *Rudra Prasna*, *Camakaadhyaya*, *Srisukta*, *Devisukta*, *Ayushyasukta*, *Medhasukta* etc and Upanishads like *Ganapati Atharvasirsha Upanishad*, *Suryopanishad*, *Narayanopanishad* and many more Upanishads, the Epics and *Puranas* etc. give us clues and measures and outlets to face the nature and environments in the globe and ensure happy life. Adjustment and to get over the hardship is the strength, effort and intelligence of Man. Veda always vouchsafes the hope that one would live a full life and remain undefeated thus: Man faces nature and Nature cooperates with or without adjustments on either side in general.

Higgs Boson; Golden Embryo *Hiranyagarbha*

Dr. C.P.Trivedi
Vedic Research Institute, Ratlam, Indore

The most important discovery of the decade Higgs Boson is the Golden Embryo Hiranyagarbha in the Vedas, and foundation of Vedic Science. The discovery of God particle; Higgs Boson is not new for India. The Indian Vedic Scientists and the seers have traced the same long back. It has been described as Creator; Vishvakarma Imaginary primeval Man Purusha; Hiranyagarbha Golden embryo, and Prajapati Lord of beings in the Vedas.

The Higgs Boson God particle is termed as *Hiranyagarbha* Golden embryo to explain 'an invisible field lying across the universe give particles their mass, allowing them to clump together to form stars and planets.' It has been described in the *Hiranyagarbha hymn* Rig.10/121*, and* from him Viraj was born; again Purusha from Viraj was born. As soon as he was born he spread and then earth and planets were born Rg.10/90/5. It is the space - force, which bind the proton and neutron in the nucleus of the atom, it has given mass, allowing them to clump together to form stars and planets.

वेदे मानवउपयोगी वास्तुशास्त्रम्

श्री चक्रधरकरः

शोधच्छात्रः, ज्योतिषविभागः श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम, नवदेहली

वेदाः सम्पूर्ण ज्ञानविज्ञानयोर्निधयः सन्ति । एवञ्च अस्माकं भारतीयानां धर्मस्याधारभूतः स्तम्भः । संस्कृतवाङ्मये वेदानां स्थानं सर्वोपरि वर्त्तते। भूतलेऽस्मिन् पुरुषार्थचतुष्टयस्य साधको मानवो भवति। मानवानां देहे यथा हस्तपादादयो विविधान्यङ्गानि सन्ति तद्वत् धर्मार्थकाममोक्षाख्यचतुर्विधपुरुषार्थस्य प्रतिपादका वेदास्सन्ति । वेदाः अपि अङ्गैरेव व्याक्रियन्ते । अत एव चतुर्दशविद्यास्वङ्गानां चर्चा विद्यते । षढ्वेदाङ्गेषु ज्योतिषं चरमं वेदाङ्गमस्तीति शास्त्रमर्मज्ञाः विद्वांसो विदन्ति यथा वेदपुरुषस्य व्याकरणं मुखमस्ति तद्वत् ज्योतिषं नयनं स्मृतम् । नेत्राभ्यां विना यथा कोपि मानवः स्वयमेव पदात्पदमपि चलितुं न शक्नोति तद्वत् ज्योतिषशास्त्रं विना वेदपुरुषस्यान्धता समापतिष्यति । एवमेव वास्तुशास्त्रं ज्योतिषशास्त्रस्य अभिन्नमङ्गमस्ति। यथा–निवासार्थक 'वस्' धातोः 'तुण्' प्रत्यये कृते सति वास्तुशब्दस्य निष्पत्तिः। यस्मिन् अधिकरणे प्राणिनां निवासो भवति तदेव वास्तु इति वास्तुपदेन व्यपदिश्यते। पुर–दुर्ग–आवास–भवन–निवेश्यभूमिः वास्तुशब्दस्य वाचको भवति । वेदाः चत्वारः सन्ति। चतुर्णां वेदानामपि चत्वारः उपवेदाः भवन्ति। ऋग्वेदस्यायुर्वेदः, यजुर्वेदस्य धनुर्वेदः, सामवेदस्य गान्धर्ववेदः, अथर्ववेदस्य च स्थापत्यवेदो नामोपवेदः। निवासयोग्यास्थापना एव स्थापत्यवेदस्य अभिप्रायः। ऋग्वेदे वास्तुपुरुषस्योपरि एकः मन्त्रः विद्यते यदत्र कथ्यते । हे वास्तोष्पते! त्वमस्माकं तारकः, धनानां च विस्तारकोऽसि। हे सोम! गोभिरश्वैश्च युक्ता वयं निर्जराः स्याम तव मित्राणि वयं स्याम। पिता पुत्रानिव त्वमस्मान् पालय– 'वास्तोष्पते प्रतरणो न एधिगयस्फानागोभिरश्वेभिरिन्दो। अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व।।' एतस्मिन् विषये पूर्णरुपेण शोधपत्रे लिखित्वा प्रदास्यामि।

वैदिक पंच तत्त्वों का स्वरूप एवं आधुनिक काल में तत्त्वों में व्याप्त प्रदूषण

श्रीमती चंदा कुमारी झा

शोधच्छात्रा, विशिष्ट संस्कृताध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्ववि., दिल्ली

पर्यावरण के पाँच मुख्य घटक तत्त्व हैं– पृथिवी, जल, तेज, वायु एवं आकाश। मानव शरीर का निर्माण भी इन्हीं पंच तत्त्वों से हुआ है, जिसमें असंतुलन होने से मानव पर दुष्प्रभाव पड़ता है। हमारी भारतीय परम्परा में आरम्भिक काल से ही मानव प्रकृति की एकात्मकता को स्वीकारा गया है। ये पंचभूत विराट् ब्रह्म की ही विभूतियाँ मानी गई है। वैदिक साहित्य में पर्यावरणीय तथ्यों का स्वरूप यही दर्शाता है कि उस समय मनुष्य ने सभी प्राकृतिक पदार्थों को महत्व दिया तथा जीवन में उनकी आवश्यकताओं को अनुभूत किया। पृथिवी हमें स्थान देती है। जल हमारा पोषण कर हमें शक्ति प्रदान करता है। पुनः सूर्य वर्षा कर जगत की रक्षा करता है। यह जहरीली किरणों को पृथिवी पर आने से रोकता है। वायु से प्राप्त आक्सीजन की आवश्यकता मनुष्य को सांस लेने में होती है। वायु अन्तरिक्ष के विकारों से हमारी रक्षा करता है। आकाश वह स्थल है, जहाँ जल के वाष्प से बादल बनने की प्रक्रिया पूर्ण होती है तथा शब्द का आश्रय भी आकाश ही है। अतः ईश्वर प्रदत्त इन तत्त्वों की मानव को रक्षा करनी चाहिए।

मनुष्य को प्रकृति से पूर्णतया अलग कर देने का कोई स्थान और समय ही नहीं है क्योंकि मानव प्रकृति का अविभाज्य अंग है। दोनों में अन्योन्याश्रय संबंध है। भारतीय धर्मशास्त्रों में भी मनुष्यों को उन कर्त्तव्यों का सर्वदा बोध कराया गया है जो सम्पूर्ण प्रकृति– पशु, वृक्ष, आकाश, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, समुद्र आदि के प्रति निर्धारित किए गए हैं। अतः मनुष्य का कर्त्तव्य होना चाहिए कि प्रकृति के बिना अनुमति के अर्थात् प्रकृति की सुरक्षा का ध्यान किए बिना केवल स्वार्थ के लिए प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग न करें। वेदों का संदेश है कि मानव शुद्ध पर्यावरण में रहता हुआ तथा वेद निर्दिष्ट मार्ग पर चलता हुआ सौ वर्षों तक जीवन यापन कर सकता है– 'जीवेम् शरदः

शतम्'। वैदिक शान्ति पाठ में पर्यावरण के सभी घटकों को सन्तुलित बनाने की कामना है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में पर्यावरण के पंच प्राकृतिक तत्त्वों में संतुलन को बताया गया है क्योंकि इन तत्त्वों में संतुलन रहने पर ही मानव स्वस्थ रह सकता है– 'पृथ्व्यप्तेजोऽनिलरवे समुत्थिते पंचात्मके योगगुणे प्रवृत्ते'। वर्तमान समय में ये पाँचो तत्त्व प्रदूषित होते जा रहे हैं। यद्यपि इन्हें कम करने का प्रयास किया जा रहा है, जैसे पर्यावरण संरक्षण की शुरूआत 1948 में 'द इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर एवं नेचुरल रिर्सोसेज' की स्थापना से हुई। इसके बाद 'जीव मण्डल सम्मेलन' 1968 तथा 'मानव पर्यावरण सम्मेलन' 1972, फिर भारत सरकार ने चौथी पंचवर्षीय योजना के दौरान विशेष ध्यान देते हुए 1972 में विज्ञान एवं प्रोद्यौगिकी विभाग ने राष्ट्रीय पर्यावरण आयोजना एवं समन्वय समिति का गठन किया परन्तु ये प्रयास पूर्णतया सफल नहीं हो पा रहे हैं। वेद में इन पंच तत्त्वों का क्या स्वरूप था तथा वर्तमान समय में ये किस प्रकार से प्रदूषण से ग्रस्त हैं यही प्रस्तुत शोध पत्र में वर्णन किया जाएगा।

मनव और प्रकृति पर याजुष चिन्तन एवं आधुनिक सन्दर्भः यजुर्वेद ३६वें अध्याय के आलोक में

डॉ० दिनेशचन्द्र शास्त्री

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वेद विभाग, गुकुरुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

सृष्टि आदि में नरमात्मा द्वारा ऋषियों के अन्तःकरण में स्फुटित ज्ञान वेद के नाम से अभिहित है। यों तो चारों वेद में मानव और प्रकृति से सम्बन्धित अनेकों मन्त्र मिलते हैं, जिनमें अदभुत चिन्तन किया गया है। पुनरापि यजुर्वेद के ३६वें अध्याय में यह चिनतन अपनी चरम परकाष्ठा मे हुआ मिलता हैं। इसके एक मन्त्र में सपष्ट रू॰ से मानव को उपदेश है कि उसके द्वारा आचरण एसा होना चाहिये, जिसमें पृथ्वी सुन्दर बने। लोगों का व्यवहार इतना सुन्दर हो कि लड़ाई–झगड़े के कारण मनुष्य में घात–पात न हो (स्योना पृथ्वी नो भव, मन्त्र १३)। मन्त्र १८ –मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षान्तम में वर्णन मिलता है कि सब प्राणी परस्पर स्नेह की दृष्टि से एक–दूसरे को देखें। मानव समाज की सबसे बड़ी कमी परस्पर स्नेह का ना होना ही है। एक मन्त्र में आता है–जो पुरुष परमात्मा के प्रादुर्भाव का प्रयत्न करते हैं और स्वार्थ त्याग वाले होते हैं, उनका जीवन सुखमय हो जाता है। कुछ मन्त्रों में प्रकृतिविषेयक चिन्तन भी है। ऐसे मन्त्रों में मन्त्र १०, ११, १४, २३ प्रमुख हैं। ध्यातव्य है कि प्रकृतिपरक चिन्तन मानव के व्यवहार पर आधारित है। इस अध्याय में कामना की गयी है कि परमात्मा जहाँ हमारे दो पैरवाले प्राणियों की रक्षा करे, वहीं चार पैर वाले पशु आदि के लिए भी कल्याणकारी होवे (मन्त्र ८)। देवयान मार्ग (धर्माचरण) पर चलने से मनुष्य को आधिदैविक आपत्ति प्राप्त नहीं होती। उसके लिए सभी प्राकृतिक देव अनुकुल होते हैं। यदि कोई व्यक्ति ऐस है, जो सारे समाज से सदा वैर–विरोध करता रहता है, ऐसे व्यक्ति के लिये जल और औषिधियां हितकार नहीं होती (मन्त्र २३)। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह बात है भी ठीक। जो व्यक्ति सदा ईर्ष्या–द्वेष व लड़ाई–झगड़े में चलता है, उसकी इस मनोवृति के परिणामस्वरू॰ कुछ विष उत्पन्न हो जाते हैं, जो इन जलों व औषिधियों के परिणाम हितकर नहीं होने देते। जो व्यक्ति सभी स्थानों से अच्छाई को लेने का अभ्यास करते हैं और इस प्रकार देववृति वाले होते हैं, उनका मन ईर्ष्या–द्वेष आदि से सदा ऊपर रहता है। इस मनःप्रसाद के कारण इनके खान–पान का इनके जीवन में उत्तम प्रभाव होता है।

इस तरह प्रस्तावित शोधपत्र में विस्तार से मानव और प्रकृति से सम्बन्धित याजुष् चिन्तन को ३६वें अध्याय के आधार पर सप्रमाण युक्तियुक्त ढंग से उद्घाटित किया जायेगा एवं इस बात पर बल दिया जायेगा कि मानव का दृष्टिकोण ऋग्यजुसामसदि के भावों से संपृक्त होना चाहिये। मानव की गति परमात्मा के सान्निध्य में ही है। धीरे–धीरे यह गति समिष्टि भावना में परिवर्तित हो जाती है।

वेदों में धन की अवधारणा

डॉ. गणेशदत्त शर्मा
पूर्व प्राचार्य, लाजपतराय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, साहिबाबाद (उ. प्र.)

धन के विषय में वैदिक अवधारणा अत्यन्त व्यापक एवं सर्वहितकारिणी है। वेदों में धन के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है, वे नितान्त सार्थक है और उनके द्वारा अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति होती है। उदाहरणार्थ 'धन' शब्द धारण, पोषण अर्थ वाली 'धा' धातु से उत्पन्न है। इस दृष्टि से अन्नादि खाद्य पदार्थ तथा वस्त्र, भूमि, भवन आदि सभी वस्तुएँ धन हैं, जिनके द्वारा सभी का धारण और पोषण होता है। इसी भाँति 'अर्थ्यते गम्यते प्राप्यते इति अर्थः'। इस निर्वचन के अनुसार स्वयं 'अर्थ' शब्द प्रयोजनवाची है, क्योंकि सांसारिक दृष्टि से अर्थ ही सबका प्रयोजन है। इसी भाँति वैदिक सूक्तों में प्रयुक्त द्रविणम्, वित्तम्, वसुः, राधः, रयि, लक्ष्मी आदि व्यापक अर्थों में अपनी सार्थकता रखते हैं।

आचार्य शंकर एवं भक्ति विशयक अवधारणा

Jh ?ku';ke feJ
शोधच्छात्र (संस्कृत), विशिष्ट संस्कृताध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्ववि., दिल्ली

वैदिक वाङ्मय में प्रत्येक व्यक्ति के लिए कुछ लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं, जिनकी प्राप्ति के लिए वह सतत् प्रयत्नशील रहता है। भारतीय मनीषियों ने इस लक्ष्य को पुरुषार्थ के नाम से अभिलक्षित किया है। इसमें धर्म, अर्थ और काम को साधन तथा मोक्ष को साध्य माना गया है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए भारतीय दर्शन में विभिन्न उपाय बताए गए हैं। जिनमें आचार्य शंकर ने भक्ति का मोक्ष के परम साधन के रूप में उल्लेख किया है– 'मोक्ष कारण सामग्रयां भक्तिरेव गरीयसी।' आचार्य शंकर के अनुसार 'स्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते' अपने स्वरूप का अनुसंधान ही भक्ति है। इसमें उपासना और श्रद्धा का होना आवश्यक है। श्रद्धा एक प्रकार की आस्तिक्य बुद्धि है। शंकर दर्शन में ज्ञान और भक्ति का अद्भुत समन्वय है। मोक्ष साध्य प्रयास की दृष्टि से भक्ति को सर्वोच्च नहीं माना गया है। वहाँ ज्ञान को प्रधान माना है। किन्तु भक्ति को अन्तःकरण की शुद्धि का उपचार माना गया है। शंकर की भक्ति में आडम्बर की अपेक्षा अन्तः साधना पर अधिक बल दिया गया है। उपासना के द्वारा जीव का अन्तःकरण शुद्ध होता है। तब परब्रह्म का साक्षात्कार होता है। आचार्य शंकर की भक्ति में उन सभी प्राकृतिक शक्तियों नदी, पर्वतादि विषयों की वन्दना की गई है, जिनको मूलतः एक ही ब्रह्मभाव नैसर्गिक रूप से जोड़ता है तथा एक दूसरे की आश्रयता को सिद्ध करता है। प्रस्तुत पत्र के माध्यम से किस प्रकार अपनी भक्ति के द्वारा आचार्य शंकर पर्यावरण एवं मनुष्य के बीच संतुलन का संदेश देते हैं। इसका सप्रमाण विश्लेषण प्रस्तुत किया जाएगा।

प्रमुख उपनिषदों में प्रकृति चिन्तन व तत्सन्दर्भीय प्रासंगिकता

हरिओम शरण मुद्गल
पी–एच– डी शोधच्छात्र, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

उपनिषदों में ज्ञान– विज्ञान– आध्यात्म दृष्ट्या अनेक विषय उपलब्ध होते हैं । यद्यपि ब्रह्म प्रतिपादन उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय है तथापि सृष्टि–कारणभूता प्रकृति का भी स्थान–स्थान पर दिग्दर्शन होता है। कुछ उपनिषदों में ब्रह्म की शक्ति माया को ही प्रकृति कहा गया है एवं कुछ में ब्रह्म को कारणभूत मानते हुये सृष्टि–प्रक्रिया प्रदर्शित है, जिसकी आधुनिक सन्दर्भ में प्रासंगिकता की दृष्टि से व्याख्या भी सम्भव है । प्रस्तुत शोध–पत्र मे प्रमुख एकादशोपनिषदों के सन्दर्भ में प्रकृति–स्वरूप पर विचार करना लक्ष्यभूत होगा। इसके अनन्तर आधुनिक सन्दर्भ में प्रतिपादित सिद्धान्तों को व्याख्यायित करना भी शोध–पत्र की परिधि में है।

मानव और प्रकृति वैदिक चिन्तन : आधुनिक सन्दर्भ में

डॉ. हर्षा कुमारी
प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, श्रीवेंकटेश्वरा महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वैदिक आर्यो ने प्रकृति में देवत्व का अभिधान किया जो उसके लिए लाभदायक थी चाहे वह वर्षा के देवता इन्द्र हो या फिर श्वास प्रश्वास के लिए आवश्यक वायु हो या खाना बनाने के लिए अग्नि या बिना ईधन के उष्मा तथा प्रकाश देने वाली सूर्य हो। यह सोच वैदिक आर्यो का प्रकृति से प्रेम, प्रकृति के प्रति सम्मान, कृतज्ञता को बताती थी। वैदिक ऋषियों ने न केवल इन्हें देवता का जामा पहनाया बल्कि उनके संरक्षण की भी बात सोच ली। प्राकृतिक तत्त्वों के साथ उन्होंने पिता–पुत्र, माता–पुत्र जैसे सम्बन्ध स्थापित कर लिये –'स नः पितेव' (ऋ. 1/1/9)। हम अगर यज्ञ के व्युत्पतिपरक अर्थ, उसमें निहित भावनाओं उसमें डाले जाने वाली आहुति, यज्ञ–प्रक्रिया को गौर से देखेंगे तो पायेंगे कि यज्ञ का एक पक्ष रोग–नाश, पर्यावरण की शुद्धि था तो दूसरा पक्ष मानव–जाति को यज्ञ के माध्यम से कई संदेश देना था जिसके द्वारा एक आदर्श समाज की स्थापना हो सके। वैदिक ऋषि की यज्ञ की यह प्रक्रिया उसे पूरे समाज के कल्याण से जोड़ता है। चीज़े अपने सूक्ष्म रूप में कई गुना प्रभाव डालती है उसी प्रकार यज्ञ में औषधीय सामग्री डालने पर ज्यादा प्रभाव पर्यावरण पर पड़ता है।

वैदिक ऋषि को मानव ही नहीं पर्यावरण के प्रत्येक घटक पशु, वृक्ष, नदी, बादल, वायु आदि की चिन्ता थी। यज्ञ का एक नाम इष्टि है। वस्तुतः यज्ञ सभी कामनाओं को पूरा करने वाला है तथापि इसकी इस शक्ति का कोई दुरूपयोग न कर सके इसलिए याज्ञिकों की अर्हता भी निश्चित की गई है। शुद्ध तथा पवित्र होकर ही यज्ञ के योग्य बनें – शुद्धाः पूताः भवत यज्ञियास। मानसिक पवित्रता की दृष्टि से पूत कहा गया है साथ ही आहुति स्वीकार करने वाले देव भी सब की आहुति स्वीकार नहीं करते थे अपितु उन्हीं की हवि स्वीकार करते थे जो पापों से रहित तथा यज्ञशील हैं। वैचारिक पवित्रता की भावना को यत्र तत्र व्यक्त किया गया है– तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु। यज्ञ शब्द का अर्थ है – देवपूजा, संगतिकरण, तथा दान। यज्ञ में विभिन्न देवों की पूजा की जाती है, यज्ञ मिलकर किया जाता है, यज्ञ के निमित्त घृतादि सामग्री के लिए दान किया जाता है। यज्ञ में दान–त्याग होता है, उसे भी ऋषियों ने समाज निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान दिया। यजु. 40/1 में ऋषि ने त्याग और भोग दोनों का समन्वय स्पष्ट किया जो आज के साम्यवाद के लिए बीज मन्त्र है –ईशावास्यामिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्, तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।

स्त्री–अधिकारय वैदिक एवं पौराणिक संदर्भ

कु. इन्दू शर्मा
शोध छात्रा, संस्कृत, दयालबाग, आगरा
एवं
प्रो. अगम कुलश्रेष्ठ
संस्कृत विभाग, दयालबाग

वेदकालीन व पुराणकालीन समाज धर्म, सदाचार एवं कर्तव्यनिष्ठा की पृष्ठभूमि पर आधारित था। पौराणिक समाज में मानव–अधिकार को धर्म व अधर्म के परिप्रेक्ष्य में समझ सकते हैं। वेद कालीन व पुराणकालीन समाज धर्म व कर्तव्य प्रधान था और अधिकार तथा कर्तव्य धर्म की अवधारणा में ही व्यापक सामाजिक व्यवस्था के रूप में विधमान थे। वैदिक संहिताओं में 'यज्ञ' का महत्वपूर्ण स्थान

है। भारतीय जन–जीवन यज्ञीय भावनाओं से ओत–प्रोत रहा है। संहिता काल व पौराणिक युग में नारी को याज्ञिक अधिकार प्राप्त थे। ऋक् संहिता के पाँचवें मण्डल के 28 वें सूक्त में विश्ववारा नामक नारी का वर्णन है, जो प्रतिदिन प्रातः स्वयं यज्ञ करती है। विश्ववारा उस नारी की उपाधि थी जो, स्वयं पापमुक्त होकर वैदिक संहिताओं का सन्देश स्वयं सुनती और अन्य लोगों को भी पवित्र करने हेतु सुनाती थी। श्रीमद्भागवतमहापुराण में स्त्रियों को पुरूष के समान अधिकार प्राप्त थे। इसलिए जब पाण्डव श्रीकृष्ण के साथ जलाञजलिं के इच्छुक मरे हुए स्वजनों को तर्पण के लिए जाते हैं तब स्त्रियों को भी अपने साथ ले जाते हैं। वेद एवं पुराणों में विवाह को एक पवित्र संस्कार माना गया है तत्कालीन समाज में बाल विवाह नहीं होते थे। विवाह की अवस्था प्रौढावस्था थी। अथर्ववेद में बताया गया है ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती व शिक्षा प्राप्त करने वाली कन्यायें योग्य पतियों को प्राप्त करती हैं– 'ब्रहमचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्'। तत्कालीन स्त्रियों को युद्ध करने का भी अधिकार प्राप्त था। ऋक् संहिता में अपने राष्ट्र की रक्षा हेतु नारियों द्वारा आयुध धारण करने का संकेत प्राप्त होता है, यथा– विश्वला नारी अपने पति के साथ देशहित के लिए युद्धस्थल में जाती है। युद्ध में उसकी एक टांग कट जाती है, जिसे अश्विनीकुमार ठीक करते है (ऋ. 1/112/10, 1/118/8)।

आधुनिक युग में महिलाओं के लिये अत्याचार से सुरक्षा के लिये विभिन्न कानून बनाये गये हैं परन्तु कानून व न्यायिक व्यवस्था महिला को उसके सम्मानजनक व गरिमापूर्ण स्थिति को स्थापित करने में असमर्थ हैं। भारत के संविधान अनुच्छेद 243 (घ) में पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए एक तिहाई स्थान आरक्षित कर दिये गये हैं परन्तु विधान सभाओं तथा संसद में महिलाओं के स्थान के लिए आरक्षण का बिल विचाराधीन है। वही वैदिक एवं पौराणिक समाज में नारी का गरिमामय रूप वर्णित हैं वहॉ पर नारी विदुषी, देवी, प्रकाशवती, उपदेशिका, न्यायकर्त्री, योद्धा राजनीतिज्ञ, के रूप में प्रतिष्ठित है। तत्कालीन नारी ने अपनी साधना, सत्यता सहनशीलता, सौम्यता, सौष्ठवता आदि सहज गुणों से सर्वदा पुरूष की सहज–चेतना को प्रदीप्त किया।

मानव और प्रकृति का वैदिक चिन्तन : आधुनिक संदर्भ

कु. इन्दु सोनी

शोधछात्रा, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वेद में पर्यावरण सरंक्षण के वे सभी जीवन–सूत्र निहित हैं, जो सदा से मानव जीवन को संरक्षण प्रदान करते आये हैं। वैदिक ऋषिगण सुखद एवं शान्ति पूर्ण जीवन के लिए पर्यावरण के प्रति सदैव सतर्क एवं संवेदनशील रहे हैं। भौतिकवाद की प्रतिस्पर्धा में हमने ही अपने हितैषी वैदिक ऋषियों के आप्त वचनों की उपेक्षा की और परिणाम हमारे सम्मुख है कि मानव जीवन को आधार प्रदान करने वाली भूमि से लेकर प्राणवायु का संवाहक वायुमण्डल तक सभी प्रदुषित होकर विश्व समाज के समक्ष विकराल समस्या के रूप में उपस्थित है। पर्यावरण संरक्षण में वैदिक चिन्तन धारा का कोई जोड़ नही है। पर्वतों, पर्वतखण्डो में देवभाव, नदियों में मातृभाव, वृक्षों में पूज्यता ये सभी वैदिक चिन्तन की पर्यावरण के प्रति सतर्कता को ही प्रकट करते हैं। प्राकृतिक संसाधनों का मानव सदुपयोग करते हुए उनका संरक्षण और संवर्धन करे। इसी भाव से उनमें देवत्व तथा पूज्यता की संकल्पना की गई है 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' का उद्घोष भी धरती माता के रक्षाणार्थ ही दिया गया है। भौतिक विज्ञानानुसार उष्मा और ध्वनि शक्ति के महत्वपूर्ण स्त्रोत माने गए हैं। यज्ञ करने से उत्पन्न अग्नि की उष्मा तथा मन्त्रोच्चारण से इलेक्ट्रोमेग्नेटिक तरंगे जीवधरियों पर सकारात्मक प्रभाव छोड़ती है। इस प्रकार वेदों पुराणों की शिक्षाओं को अपनाना परमावश्यक है, ताकि इस धरा को पुनः हरा–भरा एवं उज्जवल बनाया जा सके।

ऋक्संहिता में जल तत्त्व परक चिन्तन

डॉ. कल्पना शर्मा

पूर्व शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वेद वैज्ञानिक अन्वेषण एवं पर्यावरण–प्रबंधन आदि आधुनिक विषयों का पथ–प्रदर्शक है। पञ्चमहाभूतों में 'जल' जीवन के लिए उपयोगी और अनिवार्य तत्त्व है, जो हमारी समस्त प्रगति का संवाहक है। प्रस्तुत शोध–पत्र में पर्यावरण के महत्त्वपूर्ण घटक तत्त्व 'जल' के विविध गुणों पर आधारित नामों को बताया गया है, जैसे– अर्णः, क्षोदः, अम्भः, स्रोतः, रसः, उदकः। ऋग्वेद में आपः, नद्यः, पर्जन्य सूक्तों (7/49/1, 3/33/1) में प्राप्त जल के संरक्षण पर विचारों को भी यहाँ अभिव्यक्त किया गया है। जल की मानव–जीवन में उपयोगिता को बताते हुए स्नान, यज्ञ, पाक–क्रिया, औषधी–तत्त्व, कृषि, आदि क्रियाओं में जल के उपकारी स्वरूप को दर्शाया गया है। जल के सम्यक् प्रयोग हेतु वैदिक ऋषियों के चिन्तन को इस शोध–पत्र में प्रस्तुत किया जायेगा।

वैदिक जल–चिकित्सा विज्ञान एवं आधुनिक युग में उसकी उपयोगिता

डॉ. कामना विमल शर्मा

सहायक प्रवक्ता, दौलतराम महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रस्तुत शोधपत्र में वैदिक वाङ्मय में यत्रातत्रा वर्णित जल–चिकित्सा संबंधी प्रसंगों के माध्यम से वैदिककालीन जल–चिकित्सा–विज्ञान को जानने तथा आधुनिक युग में प्राकृतिक चिकित्सा–उपचार विधियों में जल के प्रयोगों के पीछे विद्यमान परम्परागत वैदिक सिद्धान्तों को समझने का प्रयत्न किया गया है। वैदिक वाङ्मय में जल को मातृरूपा तथा मातृभ्योप्यधिकाः भिषजः कहकर जल के कल्याणकारी एवं चिकित्सकीय स्वरूपों को दर्शाया गया है। वैदिककाल में मानव जल–चिकित्सा विज्ञान, इसके लाभों, उपयोगों तथा जल–चिकित्सा पद्धतियों से भली–भाँति परिचित था। आधुनिक–काल में अपनायी जाने वाली घरेलू या चिकित्सकीय जल–पद्धतियाँ स्पष्ट रूप से वेदों में निहित परम्परागत जल–चिकित्सकीय विधओं के अनुरूप ही हैं। जल के अनेक नाम जैसे पुरीषं, अमृतम्, भेषजम् आदि उसकी चिकित्सकीय क्षमता ही के द्योतक हैं। आयुर्वेद में भी विभिन्न प्रकार के जलों एवं उनके औषध्त्वि, गुणों एवं मानव–स्वास्थ्य पर उनके प्रभावों का विशद वर्णन प्राप्त है। जल–चिकित्सा द्वारा अनेक शारीरिक रोगों व कष्टों पर विजय पायी जा सकती है। यही नहीं वरन् जल चिकित्सा हृदय रोग, रक्त एवं मानसिक विकारों इत्यादि के उपचार में भी अत्यधिक लाभकारी सिद्ध होती है। जल ही औषधि में औषधित्व की स्थापना करता है और विभिन्न प्रकार के जल भिन्न–भिन्न औषधीय गुणों से युक्त होते है। अतः रोग–विशेष की चिकित्सा को प्रभावशाली बनाने में जल एक महत्त्वपूर्ण साधन सिद्ध होता है।

वर्तमान समय में, आधुनिक जीवन शैली के दुष्प्रभावों के कारण उत्पन्न होने वाले शारीरिक, मानसिक सभी प्रकार के विकारों के लिए जल संजीवनी के समान है, जो मानव के स्वास्थ्य को सुधार कर उसमें नव जीवन का संचार करता है। मानव के कल्याण के लिए पृथिवी पर जीवनस्वरूप जल का उपलब्ध रहना अनिवार्य है। अतः मानव ऐसे अमृत–सम जल का संरक्षण करे– यह हमारा परमधर्म है।

वैदिक वाङ्मय में निहित मानवीय मूल्यों की वर्तमान में प्रासंगिकता

डॉ. कान्ती शर्मा

असि0 प्रोफेसर (संस्कृत), रा. म. स्ना. महाविद्यालय, सिरसागंज

मूल्य का अर्थ उन विचारों, क्रियाओं, सिद्धान्तो और सम्भावनाओं को माना जा सकता है जिनका सम्बंन्ध मानव और समाज के कल्याण से है। अर्थात् मानव मूल्य का अर्थ अन्तर्निहित अच्छाई या कल्याण से है, मानव को मानव बनाने हेतु जिन गुणों की अपेक्षा की जाती है, वह मानवीय मूल्य है। मानवीय मूल्यों के द्वारा मानव के करणीय एवं त्याज्य कर्मो का निर्धारण किया जाता है। यदि हम दृष्टि डालें तो मानव मूल्यों का ऐसा उच्चतम, श्रेष्ठतम तथा गृहणीय स्वरूप वेद के अतिरिक्त दुर्लभ है। वैदिक वाड्.मय हमें सुख–शान्ति, समाज में समृद्धि, सेवा भावना, सामंजस्य, सहयोग, सदाचरण संवेदना से परिपूर्ण ह्रदय और मननशील मनुष्य बनने को प्रेरित करता है। वेद मानव मात्र को हिन्दू, सिख, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन आदि बनने को नहीं कहते अपितु वेदों का निर्देश है 'मनुर्भव' अर्थात् मनुष्य बनों।

आज वैश्वीकरण की नीति ने बाजार का आकार अवश्य बड़ा कर दिया है। वैश्वीकरण की सोच सम्पूर्ण विश्व को एक ग्राम बनाने की है। किन्तु वैदिक सोच 'वसुधैव कुटुम्बकम' तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की सोच और वैश्वीकरण की सोच में अन्तर है। वैदिक साहित्य में निहित वैयक्तिक आचरण, पारिवारिक सौमनस्यता, सामाजिक संगठन के पोषक तत्व, विश्व प्रेम की भावना, राज्य कल्याण की कामना के संदेश, आज के अन्याय, शोषण अभावों और विभिन्न विषमताओं से संत्रस्त मानव समाज को दिशा देने में सक्षम हैं। 'मनुर्भव' का वैदिक उद्घोष मानवीय मूल्यों को अक्षुण्ण बनाये रखने की दिशा में अचूकशर हैं। इस शोधपत्र में समाज की विकृति और विसंगतियों को रोकने हेतु और सामाजिक सौहार्दता को बढ़ाने वाले संदेशो को वैदिक साहित्य से अन्वेषित करने का प्रयास किया है जो वर्तमान समय की महती आवश्यकता है।

अथर्ववेद के परिप्रेक्ष्य में मनुष्य और प्रकृति का पारस्परिक संबन्ध

डॉ. कर्मवीर आर्य

ॲसोशियेट् प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, हिन्दू कॉलेज, मुरादाबाद

मनुष्य और प्रकृति में परस्पर भोक्तृभोक्तव्यभाव संबन्ध है, अतएव दोनों में इतरेतराश्रयिता है। 'प्रकृति' शब्द से स्थूलतः वृक्ष, पशु–पक्षी, पर्वत, नदी, समुद्र खनिजपदार्थ आदि अभिधेय हैं। इन्हीं पर मनुष्य का अस्तित्व निर्भर है। वस्तुतः मनुष्य को अपने अस्तित्व को बचाने के लिये एक कठोर विरोधाभास का सामना करना पड़ता है, वह यह कि उसे उन्हीं पदार्थों के 'रक्षण' का भार भी उठाना होता है, जिसके 'भक्षण' पर उसका जीवन टिका है। इसी विरोध के बीच संतुलन की एक महीन रेखा का प्रस्फुटन होता है जिस पर मनुष्य और प्रकृति का साहचर्य गतिमान होना है। वैदिक ऋषियों ने कही प्रकृति से छेड़छाड़ न करने के कठोर निर्देश दिये हैं और कहीं प्रकृति के यथासंभव दोहन करने के उतावलेपन को दर्शाती प्रार्थनायें की हैं। प्रतीत होता है कि मानव और प्रकृति में होने वाले संघर्ष को ध्रुव सत्य मानकर ऋषियों ने अपनी मेधा से मध्यमार्ग सुझाने का प्रयास किया है किन्तु विचारणीय यह है कि कहीं सहस्राब्दियों के बीत जाने के बाद आज के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में वह तात्कालिक मध्यमार्ग कालातीत तो नहीं हो गया अथवा अतिवाद के रूप को तो नहीं पहुंच गया। आज इसकी पड़ताल आवश्यक हो गयी है। विशेषतः इस तथ्य के परिप्रेक्ष्य में कि वैदिक काल की तुलना में आज के विश्व की जनसंख्या में कई गुने का अन्तर हो चला है। जीवन शैली का स्तर भी बदल गया है। औद्योगिक गतिविधियां जो कि आज के मनुष्य के भरण पोषण का एक आधार है प्रकृति से छेड़छाड़ किये बिना नहीं चलायी जा सकती।

वस्तुतः वैदिक ऋषियों के चिन्तन का आधार मानव है न कि प्रकृति। अतः यह मानना चाहिये कि मानव को केन्द्र बिन्दु मानकर प्राकृतिक सन्तुलन को बनाये रखने के लिये तत्कालीन मध्यमार्ग की रेखा के बदलाव की गुंजाइश उन्होंने (ऋषियों) छोड़ रखी है। जिसके सम्यक् उपयोग पर प्रबुद्ध जगत् को सोचना होगा। ऋषियों ने मध्यमार्ग को परिभाषित करने के लिये कुछ बिन्दुओं की ओर भी संकेत किया है। हमें मध्यमार्ग एवं उसके हेतुभूत बिन्दुओं पर गहनता से विचार करना होगा। अन्यथा प्रकृति के अन्धाधुन्ध दोहन के फलस्वरूप मानव का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा। कौन जाने – ऋषियों की मेधा मानव और प्रकृति में पारस्परिक संतुलन को बैठाने में इस विश्व की कुछ मदद कर सके?

आधुनिक युग की समस्याओं का कारण वैदिक–चिन्तन का अभाव

डॉ. कर्तार चन्द शर्मा

उपाचार्य, संस्कृत विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर

आज मनुष्य ने बहुत प्रगति कर ली है। उसने चाँद चर पाँव रख लिया है और अब वह अन्तरिक्ष में अन्य ग्रहों तक पँहुचने का प्रयास कर रहा है। पूरा विश्व एक परिवार जैसा बन गया है। कुछ ही घण्टों में अब मनुष्य विश्व के किसी भी कोने में जा सकता है और विश्व के एक कोने में बैठकर दूसरे कोने में बैठे हुए व्यक्ति के साथ साक्षात् रूप से वार्तालाप कर सकता है। भूमण्डल में होने वाली घटनाओं का पहले से पता लगाया जा सकता है। इतना ही नहीं कई अन्य असम्भव कार्यों को भी मनुष्य ने आज सम्भव कर दिखाया है जैसे दृष्टिहीन भी आज देख सकते हैं, बहरे सुन सकते हैं, गूँगे बोल सकते हैं, अपाहिज चल सकते हैं, शरीर के अङ्गों को बदला जा सकता है एवं लिङ्ग परिवर्तन भी किया जा सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि आधुनिक युग के मनुष्य ने इतनी प्रगति कर ली है कि वह अब प्रकृति को भी अपनी इच्छानुसार चलाने का प्रयास कर रहा है।

भले ही मनुष्य ने आज कितनी भी प्रगति क्यों न कर ली हो, परन्तु आज भी उसकी समस्यायें समाप्त नहीं हुई हैं। अपितु सामाजिक एवं प्राकृतिक समस्याओं ने और अधिक विकराल रूप धारण कर लिया है। क्योंकि आज मनुष्य वैदिक–चिन्तन के अभाव में अधिक स्वार्थी होता जा रहा है। सामाजिक असन्तुलन के कारण ही आतंकवाद की समस्या विकराल रूप धारण करती जा रही है। पर्यावरण की समस्या से तो आज पूरा विश्व त्रस्त है। सामाजिक एवं प्राकृतिक समस्याओं को भी दूर करने के लिए वैदिक–संस्कृति का पालन करना होगा क्योंकि वैदिकज्ञान मनुष्य को समानता का व्यवहार सिखाता है, यज्ञ के द्वारा प्रदुषण समाप्त होता है और पर्यावरण शुद्ध होता है। पेड़–पौधों, नदियों, पर्वतों एवं अन्य प्राकृतिक वस्तुओं की रक्षा से हमारी समृद्धि बढ़ती है। अध्यात्मवाद के मार्ग पर चलने से मनुष्य मोहमाया से दूर रहता है और सामाजिक बन्धन उसे प्रभावित नहीं कर सकते। वह सभी को अपना मित्र समझता है, इसलिये सभी उसका आदर करते हैं, इस प्रकार उसका जीवन स्वर्ग बन जाता है। अतः वैदिक–संस्कृति को अपनाने से एवं वैदिक–चिन्तन से मनुष्य प्रगति तो करेगा ही इसके साथ–साथ सामाजिक एवं प्राकृतिक समस्यायें भी उसके मार्ग को अवरुद्ध नहीं करेंगी।

वानस्पतिक औषधियाँ एवं मानव प्रकृति : अथर्ववेद के सन्दर्भ में

डॉ. करुणा आर्या

दौलत राम महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

आधुनिक युग में मानव अनेक प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक समस्याओं से ग्रस्त है। अथर्ववेद में वानस्पतिक औषधियों के द्वारा मानव शरीर व मानसिक प्रकृति में आये विकारों को सुधारने का वर्णन प्राप्त होता है। मानव आज जिन विकारों से ग्रस्त है, उन सभी के उपचार के लिये अनेक उपयोगी औषधियाँ अथर्ववेद में वर्णित हैं। यदि मानव को ये औषधियाँ प्राप्त हो जायें तो संभवतः वह आधुनिक जीवन में आयी हुई अनेक समस्याओं का निराकरण करने मे तथा स्वास्थय– रक्षण कर पाने में समर्थ हो सकेगा। प्रस्तुत शोधपत्र में 'वनस्पति' तथा 'औषधि' की शास्त्रीय परिभाषा बताते हुए वेदों तथा शास्त्रों में उनकी प्रशंसा, पोषण, वर्धन, संरक्षण का महत्व बताकर उनके प्रकार भी बताये हैं, यथा– आथर्वणी, अर्घिरसी, दैवीय, मनुष्यजा आदि। अथर्ववेद के सन्दर्भ में औषधियों का विकास तथा वानस्पतिक औषधियों के गुण, स्थान तथा उनके द्वारा होने वाले रोगों का निदान का वर्णन भी किया गया है। इस शोधपत्र में मात्र 13 औषधियों का साररूप विवेचन हो पाया है, जबकि 134 के लगभग औषधियाँ प्राप्त हुई हैं। ऐसी अनेक औषधियां है जिनको यदि गुणों के आधार पर समझ कर कुशल वैद्यों के संरक्षण में लिया जाय तो वह आज भी प्राप्य हैं, यथा– पिप्पली, रामा, कृष्णा, असिक्नी, आसुरी, अपामार्ग पृष्निपर्णी आदि। शोधपत्र में इनको विस्तार से बताया गया है। अथर्ववेद को स्वयं वेदों में भेषजशास्त्र कहा है सभी प्राणियों के लिए वह आरोग्यकर शास्त्र है। औषधियों का अमूल्य ज्ञानवर्धक तथा प्रायोगिक शास्त्र है। अतः अथर्ववेदीय औषधियों को उनके पूर्णस्वरूप में जाना जाये और अधिक से अधिक लाभ–प्राप्तकर परिवार, देश, तथा समाज को रोग मुक्त बनाया जाये।

Vision of Mental Health Care and Social Well-Being in Vedic Wisdom : A Study

Dr. Khagendra Patra

Ex-Chairperson, WSC, University of Leiden, Netherlands

The present world is facing innumerable problems including poverty, unemployment, terrorism and various diseases. Modern man has been trying to overcome all such adverse situations with the help of developed Science and Technology. So far as health problem is concerned present Medical Technology guides mankind a lot to cure physical diseases through various medicines and surgical operations etc. But in spite of all such efforts many people in the world are still suffering from mental and social disorders, which prove that the present Medical Science is not self-sufficient for all round health services. As a result it requires some more effective techniques for managing health problem. Indeed, the exponents of Medical Science have realized that without promoting a state of well-being in the individual mind and society, the task of health care will not be completed. So, they have recognized alternative methods of health care, which include Spiritual Therapy. Moreover, the sources of Spiritual Therapy are Vedas, Upanishads, Bhagavadgeeta and other relevant Sanskrit writings. So it is proposed here to throw some light on the 'Vision of Mental Health Care and Social Well-Being in Vedic Wisdom – A Study'.

मानव और प्रकृति में बढ़ती दूरी से मानवीय सम्बन्धों का हनन

डॉ. ललिता जुनेजा
असोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत, राजकीय महाविद्यालय, फरीदाबाद (हरियाणा)

प्रकृति मानव के जीवन को शक्ति देती है। वायु, भूमि, वृक्ष, जल आदि पर्यावरण में स्वाभाविक संतुलन बनाते हैं एवं मानव के साथ सृष्टि के प्रारम्भ से ही उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। पर्यावरण या प्राकृतिक पदार्थ निराशा और दुःख में एक आशा का अपूर्व संचार करती है। हमारे पूर्वज सौन्दर्य–प्रेमी थे। वे वृक्षों की पूजा किया करते थे इसीलिए आज भी पीपल, वटवृक्ष, केले आदि वृक्षों तथा तुलसी आदि पौधों की पूजा करते जन–समुदाय को देखा जाता है। भारत में नदियों और पर्वतों को देवी–देवताओं का पद मिला है। वेदों में वर्णित प्रकृति–संरक्षण के उपायों पर ध्यान देते हुए स्वस्थ, सजग तथा सहयोग का जीवन बिताना चाहिए।

Preserving Nature through Vedic Culture

Ms. Maha Lakshmi Devi
Spiritual and Vastu Healer, Sripuram Inc., USA

Vedic cultural practices play significant roles in protecting and preserving the environment. Ancient times were serene and peaceful since the environmental pollution was minor compared to our present day pollution levels. Our Rishi's performed regular Homas, which had the capacity to cleanse even the Sun Spots. Sun Spots are known to cause natural calamities like earthquakes, hurricanes and also man, made calamities like wars. Performance of regular Homa's cleanse the atmospheric pollution caused by dead or mutilated animals and other natural pollutions. The combination of the powerful energy released through the auspicious ingredients offered into the fire combined with the Sanskrit mantras create extremely auspicious and purifying vibrations beneficial to all who attend the homa.

The smoke that rises from a homa contains a powerful healing energy, and as it rises to the heavens it purifies the atmosphere, both physically and subtly, encouraging a peaceful environment and gentle weather. During the Homa, aldehydes are released which clear the atmosphere of deadly bacteria. Cow Ghee, also known as Sahasra Virya prevents aging and nourishes the body with Ojo Shakti. Cloves and cardamoms release hydro-carbons which divide and spread curing even poisonous fevers.

The damaging effects of natural catastrophes will be reduced through the performance of Homa's. The energetic vibrations that are invoked during a traditional Vedic fire ceremony represent the most powerful presence of the Divine on Earth. The element of fire is associated with the upward motion of the Divine Kundalini energy and is considered to be the most powerfully purifying element. The sacred homa fire, due to divine grace, can purify every kind of negative karma. Other Vedic ways to protect the environment would be discussed in this presentation.

जलतत्त्व : वैदिकवाङ्मय के आलोक में

प्रो. मीरा द्विवेदी
अध्यक्षा, संस्कृत विभाग, साऊथ कैम्पस, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सृष्टि के निर्माण एवं विकास में जल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राणिमात्र के जीवन का आधार होने से इसे जीवन भी कहते हैं। जीवनदायी महत्त्व के कारण अथर्ववेद में इसे जीव, उपजीव, संजीव एवं जीवात्मा आदि पर्यायों से अभिहित किया गया है। सुवृष्टि द्वारा जल अन्न आदि का कारण है। वैदिकसंहिताओं में स्तुत अन्तरिक्ष स्थानीय अधिकाँश देव वर्षा कारक होने से जल से सम्बद्ध हैं। गुण–धर्म के आधार पर जल ही इन्द्र, रुद्र, पर्जन्य, वरुण, अपान्पात् आदि देवों के रूप में स्तुत हैं। वैदिक वाङ्मय के परिशीलन से विदित होता है कि ब्रह्माण्ड के तीनों लोकों भू, भुवः, और स्वः में जल की सत्ता है। क्रन्दसी का समुद्र सरस्वान्, संयती का नभस्वान् और रोदसी का अर्णव कहलाता है। वेदों में प्राप्त हैमवती, उत्स्या, वर्ष्या, निष्यन्दा, अनूप्या, खनित्रामा आदि संज्ञाएँ तत्कालीन विविध जलसंसाधनों एवं जलस्रोतों की जानकारी उपलब्ध करातीं हैं। रूप भेद के आधार पर अन्तरिक्षीय जल के धार, कार, तौषार एवं हैम भेदों की जानकारी भी मिलती है।

वर्तमान समय में जल एवं जलसंसाधनों से सम्बद्ध समस्यायें एक भयावह परिदृश्य उपस्थित कर रहीं हैं। वैज्ञानिकों द्वारा यहाँ तक आशंका व्यक्त की जा रही है कि अगला विश्वयुद्ध पानी के लिए लड़ा जायेगा। जल एवं जलसंसाधनों की समस्याओं के अनेक रूप हैं, जैसे–प्रदूषण, घटते जलस्रोत, जलसंसाधनों का निर्माण एवं पुनरुद्धार आदि। प्राचीन मनीषी शुद्ध जल के महत्त्व से परिचित थे और उसके संरक्षण के लिए प्रयास निरत थे। जल की हिंसा से तात्पर्य जल के प्रदूषण से ही है। प्रस्तुत शोधपत्र में वैदिकवाङ्मय के आलोक में जल, जल का महत्त्व, जलसंसाधन, तद्विषयक प्रदूषण के कारण एवं उनसे मुक्ति के उपायों की चर्चा की जायेगी।

मानव एवं प्रकृति का वैदिक चिन्तन : आधुनिक सन्दर्भ में

कु. मोनिका भाटी
शोध छात्रा, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली (राजस्थान)

सृष्टि निरूपता ने प्राणियों के सह–अस्तित्व के निमित्त पर्यावरण का निर्माण किया, जिससे प्राणीमात्र के सुख–साधन और समस्त तत्वों का हमें साक्षात्कार होता है। भारतीय संस्कृति में पंचदेवों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) को संपूजित किया है किन्तु ये पंचदेव मानव द्वारा ही प्रदूषित हो रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप मानव जाति ही विनाश की ओर अग्रसर नहीं हो रही है अपितु समग्र वनस्पति–जगत् के प्राणी, पशु–पक्षी और जीवधारी विनाश की ओर अग्रसर हैं। मानव सभ्यता तथा संस्कृति के विकास में पर्यावरण का विशेष योगदान रहा है। वेदों में सृष्टि के समस्त पदार्थ, प्राणियों के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध और बृहद् प्रणाली सूक्ष्म रूप में समाहित है। प्रतिपाद्य सत्य है कि मानव को उसकी शारीरिक तथा मानसिक संरचना में प्रकृति के गुणों से ही अनुभूति का संस्पर्श था। प्रत्येक मनुष्य का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वह पारिस्थितिकी चक्र व पर्यावरण की सुरक्षा करे। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वेदों का अनुकरण अत्यावश्यक है।

Systems View of Health and Healing of Human-being according to Ayurveda

Ms. Monica Kunwar Rathore
Ph.D Scholar, Special Centre For Sanskrit Studies, JNU, Delhi

Health and illness are parts of human life ever since the beginning. Upon falling ill, it is natural to wish for quick healing and revitalization of health. Healing involves a basic logic of transformation from sickness to wellness, dis-ease to ease. The *Webster's Collegiate American Dictionary, Tenth Edition*, defines *heal* as:

1. To make whole or sound; restore to health; free from ailment
2. To bring to an end or conclusion, as conflicts between two people, groups, etc., usually with the strong implication of restoring former amity; settle; reconcile
3. To free from evil; cleanse; purify; to heal the soul
4. To effect a cure
5. To become whole or sound; mend; get well

Beside this, the word 'healing' has Greek origin. Hygeia is the Greek goddess of healing. She is the daughter of Asclepius, the god of medicine. Hygeia's focus is on hygiene (this is where we get the word) and cleanliness as protection against disease. Healing is not one-dimensional but multidimensional and includes physical, psychological, spiritual and social well-being. The concept of healings as well as health is central to any system of medicine.

Ayurveda supplies an approach that can help to reverse the "one size fits all" philosophy of conventional medical practice. It propounds sickness as a dynamic event in the life of an individual, a problem of balance and relationship, the result of disharmony between the sick person and his or her environment. Its healing approach is holistic as it combines all aspects that support the physical, social, psychological, emotional and spiritual wellbeing to achieve optimal health. Well people are seen as integrated, interactive whole entities on all planes (spirit, soul and body), not as fragmented parts such as liver, bones, mind, heart etc. which conventional medicine does. This paper will establish the systems view of health and healing of man (individual) according to Ayurveda.

'माता भूमि पुत्रो अहं पृथिव्याः' – आधुनिक परिप्रेक्ष्य में

डॉ. निशीथ गौड़
असि. प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, डी.ई.आई. विश्वविद्यालय, आगरा

अथर्ववेद के भूमि–सूक्त में 'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः' द्वारा मानव ने साहित्य में प्रथम बार पृथिवी को माता बताकर अपने आपको उसका पुत्र में बताया है। 'मातृभूमि' की धारणा का यह प्रथम उद्‌गार है। इस राष्ट्र प्रेम से ओत–प्रोत सूक्त में विविध रूपा वसुन्धरा की अनेक सुन्दर तथा कृतज्ञतापूर्ण शब्दों में स्तुति की गई है। वह विविध ओषधि एवं वनस्पतियों से सब प्राणियों का भरण–पोषण उसी प्रकार करती है जिस प्रकार कोई माता दूध से अपने शिशु का। भूमि अटल है, दृढ़ है अपने शिशुओं के लिए सब कुछ सहन करती है। पृथ्वी रत्नगर्भा है, प्राणिमात्र के लिए ऊर्जा का महान स्रोत है। यह ऊर्जा और दृढ़ता मनुष्य को सतत् दृढ़ और स्वतन्त्र रहने की प्रेरणा देती रहती है।

मानव और प्रकृति पर हमारे वैदिक ऋषियों ने चिन्तन करते हुए क्षिति, जल पावक, गगन, समीर इन पंच तत्त्वों में क्षिति अर्थात् पृथ्वी को अत्यन्त पावन मानते हुए इसे माता के समान माना और माता की सुरक्षा बच्चों का प्रथम दायित्व है। आज इन पंचतत्वों के दूषित हो जाने के कारण हमारा चिन्तन भी दूषित हो गया है। इसलिए आज सबसे बड़ी आवश्यकता है हमारी धरती माँ की सुरक्षा की। उसका अस्तित्व संकट में है। जहाँ आज पुत्र अपनी माँ की अवहेलना कर रहा है वहीं मनुष्य अपनी मातृभूमि को विस्मृत और तिरस्कृत कर रहा है। आज जरूरत है कि हम सभी इस भूमाता के आहत हृदय को अपने शुभ–कर्मों से पीड़ा मुक्त करें।

श्वेताश्वतरोपनिषद् (वीरशैवभाष्य) में जगत्सर्जकता

प्रवीण कुमार द्विवेदी

शोध छात्र, विशिष्टसंस्कृताध्ययनकेन्द्रम, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

उपनिषद् वह विद्या है, जो परब्रह्मशिव से सम्बनधित है । श्वेताश्वतरोपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद के अन्तर्गत परिगणित उपनिषदों में पञ्चम स्थान परप्रतिष्ठित है (मुक्तकोपनिषद् ,१/३२)। ईश, हर, लिङ्ग, रूद्र, गिरिशन्त, गिरित्र, शिव, ईशान, महेश्वर आदि परमेश्वर के नाम इस उपनिषद् को शैवागमों से सम्बद्ध करते हैं । सांख्यादि वेद के एक देश का अनुशरण करते हैं, किन्तु शैवागम वेदों का पूर्णतया अनुशरण करते हैं । अतरू वेदमय शैवागमों का अन्य प्रस्थानों में विशिष्ट स्थान है । शैवागमों को सिद्धान्तागम भी कहते है, क्योंकि वे वैदिक सिद्धान्तों का ही निरूपण करते है, और अवैदिक मतों का खण्डन । अतः दोनो का प्रमाण्य समान रूप से स्वीकार करना चाहिये (सिद्धान्तशिखामणि, ५/७–१३)। वीर शैव मत पूर्णतरू वैदिक है क्योंकि वह श्रुति को परम प्रमाण मानता है । तदनुसार परब्रह्म शिव विश्वमय तथा विश्वोत्तीर्ण दोनो है । परमशिव से पृथ्वी पर्यन्त छत्तीस तत्त्वों का सङ्कोच विस्तार पञ्कृत्य (सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह) द्वारा निरन्तर चलता रहता है, जिनमें पञ्चमहाभूतों की जगत्सर्जकता स्थूलतया एवं सूक्ष्मतया दोनों महत्त्वपूर्ण है, जिनका वीर शैव मत के षड्स्थलों के साथ सम्बन्ध है (श्वेताश्वेतरोपनिषद्,, प्रस्तावना, पृष्ठ अप) । इस शोध पत्र में उपर्युक्त पञ्चतत्त्वों के (जगत की संरचना में) स्वरूप को वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किया जाएगा, साथ ही त्रिवृत्करण एवं पञ्चीकरण जैसे प्रमुख सिद्धान्तों में इन तत्त्वों की भूमिका बताते हुए, उनकी आधुनिक काल में प्रासङ्गिकता भी प्रस्तुत की जाएगी ।

The Solution of Environmental Problem through Vedic Tradition

Ms. Pooja Bundel

Research Scholar, Lal Bahadur Shastri Sanskrit Vidyapeeth, Delhi

The ecological awareness growing today is a reaction to the environmental chaos caused by the selfish technological achievement. After Industrial Revolution, in order to realize rapid development and achieve the maximization of economic benefit, human adopted the value of conquering and plundering the nature and unilaterally pursued the economic development, which directly led to environmental deterioration, ecological imbalance, and various inharmonious relationships between the reallocation of non-renewable resources and human who demands ecological balance. The Vedic seers connected the human life with nature through developing *Tapovana* in dense forest, educate the *brahmachari* in *ashramas* or *gurukul* and worshipping the divine being like *Indra, Varuna, Surya, Soma, Marut* etc The world constitutes five elements Earth, Water, Air,

Fire and Sky. Of these, the three elements Earth, Water and Air are prone to pollution, while the rest remain unaffected. The pollution which disturbs ecological balance is called environmental pollution. In Vedic culture man was as part and parcel of nature, used to live harmoniously with it. He even treated the forces of nature as divine beings - *Agni Deva, Varuna Deva, Surya Deva, Vayu Deva* and glorified their existence and prayed for their intervention in nature's fury. So this paper will emphasize the vision for ecological balance for harmonious relation with nature.

मानव और प्रकृति पर वैदिक चिन्तन : आधुनिक संदर्भ

डॉ. पूनम घई

एसोशिएट प्रोफेसर एवं प्रभारी, संस्कृत–विभाग, आर.एस.एम.(पी.जी.) कॉलेज, धामपुर (बिजनौर)

भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान गौरवपूर्ण है। भारतीय आचार–व्यवहार, रहन–सहन, धर्म–कर्म को भली–भांति समझने के लिए वेदों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। वेदों से ही हमें वैदिक–संस्कृति का ज्ञान होता है। वैदिक साहित्य में पर्यावरण चिन्तन का प्रतीक है– प्रकृतिवादी चित्रण। वैदिक युग में प्रकृति पूजा का विधान था। प्रकृति सदैव से मानव के लिए वरदान है। प्रकृति के सभी तत्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र आदि किसी न किसी रूप में मानव का हित करते हैं। वर्तमान समय में आधुनिक जीवनचर्या, पर्यावरण असन्तुलन, अनैतिकता, अनास्था आदि के कारण मानव जीवन तथा प्रकृति में अनेक प्रकार की विकृतियां उत्पन्न हो गई है, जो विभिन्न प्रकार के शारीरिक तथा मानसिक रोगों को उत्पन्न करती है। अतएव आज आवश्यकता पुनः वैदिक पद्धतियों की ओर देखने की है। प्रस्तुत शोध–पत्र में बाह्य प्रकृति एवं आन्तरिक प्रकृति के अन्तर्गत वैदिक वाड्.मय में मानव एवं प्रकृति का अध्ययन किया जा रहा है।

Eco-Sustainability- Need for Revolutionizing Societal and Individual Consciousness : How do the Vedic Messages help?

Dr. H.Poornima Mohan

Associate Professor, Sanskrit, Sree Sankaracharya University of Sanskrit, Kalady (Kerala)

The question of eco-sustainability has attained such alarming proportions that nothing short of a societal and individual revolution can help to stall the degradation to environment caused by collective and individual activities. These detrimental activities and the attitudes behind them, again, collective as well as individual, need to be altered lock, stock and barrel. There needs to be a revolution of conscience which would ultimately result in a transformation of the conscience - placing need above greed. Only then, a sustainable solution for the problem of ecological degradation can be found. This revolution should transcend the state domain and go into individual conscience and break into the hegemonic social belief that there is no alternative path to move forward. This, we believe, can be achieved by taking a leaf or two from the Vedas. We do recognize that the social system and the economy we live in presently do bear no semblance to those during the times of the Vedas. Nevertheless, the way the ethos of our society was shaped by giving pride of place to nature and sustainability is a potent weapon in the intellectual pursuit for a lesser evil, producing alternative path of development. It is also noteworthy

that in the Vedic verses there are streaks of a genuine socialism which speaks against the grain of modern economic system, that is, accumulation and profit, as prime movers in the march for progress.

This paper identifies the problem, illustrates examples, emphasizes the need for a revolutionary change in attitudes, both collective and individual, and brings out how Vedic literature would help in a two-pronged way in this process. In our analysis, we find that Vedic literature gives on the one hand, pearls of wisdom in the journey to seek a path different from one which accords primacy to quest for wealth with the aim of further generation of wealth and on the other hand, extols Nature in glorious terms, emphasizes that man is not different from Nature but part of it and avers that the only way to live is in harmony with Nature and natural environment. Thus, we can find that our heritage had well accorded principles, which detest the primacy of accumulation rampant in present day economy, which, in its pursuit, desecrates the environment and ecological balance. In lieu of conclusion, the paper highlights the findings.

Nature and Human Society –a Psychological Significance of vedantic Ideas

Prashant Bhardwaj
Principal Consulatant, IT Vision 360, Gurgaon

If we see the Indian Society, the far off Vedic age which we no longer understand, for we have lost that mentality, we see that everything is symbolic. Take the *haymn* of the Rigveda, which is supposed to a marriage hymn for the union of a human couple and was certainly used as such in the later Vedic ages. Indian ideal of the relation between man and women has always been governed by the symbolism of the relation between purusha and Prakriti.The symbolic age of the evolution is predominantly religious, spiritual, economic, physical and ethical, is subordinate to the spiritual ideas while the other stage the typal, is predominantly psychological and ethical, is subordinate to the psychological ideas.

मानव का प्राणतत्त्वः संहिताओं के सन्दर्भ में

प्रताप चन्द्र राय
शोध छात्र, संस्कृत, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वेद में प्राणतत्त्व का विशेष महत्व है, क्योंकि वही जीवन का आधार है । विश्व के प्राचीनतम वाङ्मय ऋग्वेद में प्राण को 'आयुरू' कहा गया है (ऋ१.१.६६.०१)। जिस दिन प्राण समाप्त हो जाता है, जीवन या आयु समाप्त हो जाती है। प्राणवाचक शब्दों में 'असु' शब्द का भी ऋग्वेद मंङ अनेक स्थलों पर प्रयोग मिलता है। वहाँ प्राणदायिनी शक्ति का दैवीकरण 'असुनीति' नाम से किया गया है और उससे प्रार्थना की गई है कि वह जीवन के लिए मन, आयु, चक्षु, प्राण तथा भोग प्रदान करें (ऋ१०.५६.५–६)। प्राण ही मन को धारण करता है और सबमें वह प्राण अलग–अलग चक्षुप्राण आदिनामों से व्यक्त होता है। तत्तत् प्राणों के इन्द्रियों से निकल जाने पर उन इन्द्रियों की शक्ति समाप्त हो जाती है। उनमें प्राणन–अपानन क्रिया नहीं हो सकती। प्राण केवल जीवधारियों में ही

नहीं,अपितु पृथिवी आदि लोकों में भी है। पृथिवी में स्थित प्राण पृथिवी–प्राण है, द्यौ में स्थित प्राण द्यौ–प्राण है तथा अन्तरिक्ष में स्थित प्राण अन्तरिक्ष–प्राण है। मनुष्य या अन्यजीव धारियों की अपेक्षा ये प्राण अधिक शक्तिमान है, इसलिए ये दिव्यप्राण हैं। अथर्ववेद के एक मन्त्र(११.०४.०२) से यह स्पष्ट होता है कि प्राण का अर्थ केवल श्वास,उच्छ्वास आदि ही नहीं हैं, बल्कि यह प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों या कार्यों में भी स्थित है। ऋषि अपने जीवन में इन प्राणों को प्राप्त करने की सदा कामना करते हैं,क्योंकि इन्हीं दिव्य–प्राणों से उनका भी प्राण अनुप्राणित है। निष्कर्षतरू कहा जा सकता है कि प्राण ही जीवन का आधार है। ब्रह्माण्ड में जो कुछ है सबमें प्राणशक्ति व्याप्त है। जहाँ प्राणों की संख्या अनेक है,वहाँ सबका अधिष्ठातृ अंश रूप में सबसे व्याप्त एक परमेष्ठी प्राण है।

मानव–व्यक्तित्त्व में निहित अमृत का वैदिक अनुशीलन

डॉ. प्रतिभा शुक्ला

प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, एस.एस.डी.पी.सी.पी.जी. गर्ल्ज कालेज, रुड़की

प्रतीकवादी शैली में एक शब्द के पर्याय रूप में परिगणित अनेक शब्द स्थूल रूप से समानार्थक प्रतीत होते हुए भी वस्तुतः किसी विशेष अर्थ को द्योतित करते हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र में इसी दृष्टि से मानव–व्यक्तित्त्व में निहित 'अमृत' का संक्षिप्त विवेचन किया गया है। सामान्यतः 'अमृतम्' एक ऐसे पेय का वाचक माना जाता है, जिसको पीकर प्राणी अमर हो जाता है। वेद में भी इस शब्द का अर्थ इसी अर्थ में हुआ है। अमृत के इस गुण के कारण मर्त्यों द्वारा उसकी मांग की जाती है और उस मांग की पूर्ति के लिए उसे मर्त्यों में अधिष्ठित (अथर्व. 19/26/1) किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक प्राणी में अमृतम् एवं मर्त्यम् नामक दो परस्पर विरोधी तत्त्वों की उपस्थिति सिद्ध होती है। इसका कारण यह है कि प्राणी में अमृत जीव मर्त्य शरीर के साथ सयोनि होकर मर्त्य की स्वधाओं द्वारा आचरण (ऋ. 1/164/30) करता है। दूसरे शब्दों में 'अमृत' का सम्बन्ध अमृत जीव से है।

मानव–व्यक्तित्त्व में विद्यमान मर्त्यम् और अमृतम् इन दोनों का स्थापक देवाधिदेव परमेश्वर है, जिसको वेद में अमृत का स्वामी (ऋ. 7/4/6) कहा जाता है। अग्नि, इन्द्र एवं सोम से 'अमृतम्' का धनिष्ठ सम्बन्ध है। वास्तव में 'अमृत' शब्द सोम नामक पेय के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है जिसको पीकर हम अमृत हो सकते हैं तथा ज्योति एवं देवों को प्राप्त (ऋ. 8/48/3) कर सकते हैं। सोम का कोई विशेष रूप ही अमृत–प्राप्ति में सहायक हो सकता है जो मनुष्य की अष्टाचक्रा नवद्वारा अयोध्या नामक देवपुरी के हिरण्ययकोष के ज्योतिर्मण्डित स्वर्ग (अथर्व. 10/2/31–32) में स्थित है।

ऋग्वेदीय मण्डूक सूक्त : प्राकृतिक सन्दर्भ

डॉ. प्रवेश सक्सेना

पूर्वाचार्या, संस्कृत, ज़ाकिर हुसैन कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

इस पत्र में ऋग्वेद के सप्तम मण्डल में प्राप्त मण्डूक सूक्त पर एक मौलिक चिन्तन प्रस्तुत किया जाऐगा। प्रस्तुत सूक्त वास्तव में पर्यावरण सन्तुलन का दस्तावेज़ है। 21वीं सदी के पर्यावरणविद् भी मेंढकों की घटती संख्या से चिन्तित है। इसके कई कारण है– फ्रांस और चीन में मेंढक का मांस बड़े शौक से खाया जाता है। पर्यावरण–संरक्षण के उद्देश्य से इसके निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाया गया है परन्तु तब भी चोरी छिपे यह खाया जाता है। मेंढक के लुप्त होने का एक अन्य कारण यह भी है कि आज विज्ञान के छात्र विछेदन (Dyssection) के लिए सबसे पहले मेंढक का ही प्रयोग करते हैं। वर्षा ऋतु के आगमन की सूचना देने वाले मेंढकों का इस सूक्त में स्तवन किया गया है। इससे उनके महत्त्व का पता चलता है। प्रस्तुत शोध–पत्र में प्रकृति की प्रमुख भोजन श्रंखला के सूत्र मण्डूकों की उपयोगिता का वर्णन किया गया है।

शिवसंकल्पसूक्त में वर्णित मन का मनोवैज्ञानिक वर्णन

श्री प्रेम बल्लभ देवली
शोधछात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वैदिक ग्रन्थों में भारतीय आर्ष परम्परा का उत्कृष्ट चित्र देखने को मिलता है। भारतीय चिन्तन वैदिक वाङ्मय को केवल इतिहास के सर्वेक्षण की वस्तु नहीं मानता। इन ग्रन्थों में सार्वकालिक सत्यों का प्रतिपादन किया गया है। आधुनिक पाश्चात्य चिन्तकों ने मन की गुत्थियों को सुलझाने के लिए नाना प्रकार के सराहनीय प्रयास किए किन्तु मन के अनके रहस्य अभी भी अज्ञात हैं। जब हम वैदिक वाङ्मय का आलोडन करते हैं तो आश्चर्यजनक रूप से मन की रहस्यमय गुत्थियों को सुलझाने के प्रयास इस वाङ्मय में दिखाई देते हैं। इस दृष्टि से शिवसंकल्पसूक्त एक महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय उपलब्धि है। विचारणीय तथ्य यह है कि आखिर मन के शिवसंकल्प होने की कामना क्यों की गई? क्या शुभ संकल्प मात्र से हम नाना प्रकार की भौतिक तथा आध्यात्मिक उपलब्धियों को प्राप्त कर सकते हैं। इस दृष्टि से मन के स्वभाव की विभिन्न विशेषताओं को वैदिक ऋषि ने अत्यन्त सरल भाषा तथा गम्भीर शैली में शिवसंकल्पसूक्त में प्रस्तुत किया है।

मानव और प्रकृति : एक विवेचन

डॉ. रजनीश शुक्ल
विकास अधिकारी, परियोजना विभाग, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली

इस चराचर जगत् में चेतन तत्व का महत्व अधिक है क्योंकि वह गतिमान एवं सजीव है तथा सृष्टि का भौतिक समन्वय उसी के निमित्त है। जीवधारियों में भी मनुष्य का स्थान सर्वोपरि है क्योंकि वह एक ऐसा प्राणी है जो विवेक–बुद्धि से समन्वित है तथा ज्ञान–गरिमा का अधिकारी है। महाभारत में लिखा है कि ब्रह्म का रहस्य यही है कि सृष्टि में मानव ही सर्वश्रेष्ठ है। प्रत्येक मनुष्य को यह अनुभव करना चाहिए कि वह सारभूत रूप से आत्मा है और जीवन का उद्देश्य वस्तुतः पवित्र है क्योंकि वह ब्रह्माण्ड के कार्यों में सहभागी होता है। मानव एवं उसकी प्रकृति को जानना जटिल है। मानव केवल एक पवित्र दिव्य आत्मा नहीं है और न ही केवल अमूर्त बुद्धि केन्द्र, उसके साथ इन्द्रियाँ भी हैं, जो भावनाओं को उत्तेजित करती हैं। उसकी आत्मा दिव्य के अनुरूप है जिसे हम भगवान् कहते है। उसमें मन होता हैं जो अनन्य रूप से मानवीय है, जो अनुरागी है, भावनाओं और हितों से परिपूर्ण, उसका शरीर भौतिक जगत् की देन है और उसके पास सब विचारों का मूल कारण व्यापक बुद्धि भी है, जिसके द्वारा सारे दर्शनशास्त्र, विज्ञान, कला, भाषायें सबकी उत्पत्ति है और इन सबके अतिरिक्त उसके पास इन्द्रियॉ हैं जो सब प्रकार के अनुभवों का प्रवेश द्वार है। मनुष्य का रूप ऐसा है जिसे विज्ञान और दर्शन शास्त्र दोनों उसे पूर्ण रूप से समझने में असफल रहे हैं। मानव की श्रेष्ठता का अनुभव करते हुए ही पुरूष–सूक्त में ईश्वर के लिए पुरूष संज्ञा का उपयोग किया गया है। निसर्ग की शक्तियों का दिव्य–स्वरूप धीरे–धीरे विकसित होता गया और उसके विकास की सीमा को व्यक्त करने के लिए 'मनुष्य' या 'पुरूष' शब्द से अधिक उचित कोई शब्द वेदों में नहीं मिला। मानव को उत्तम कार्यों के लिए प्रेरित करना ही महामानव (अवतारों) का लक्ष्य होता है।

जैन दर्शन में भी मनष्यु–जन्म के महत्व को स्वीकार किया गया है। मानव का उदय शुभ की सिद्धि के लिए होता है। इस विषय में भगवान महावीर कहते हैं कि जब अशुभ कर्मों का विनाश होता है, तभी आत्मा शुद्ध, निर्मल और पवित्र बनती है और तभी प्राणी मनुष्य–योनि को प्राप्त करता है। बौद्धधर्म में मानव जीवन का बड़ा महत्व है। शिक्षासमुच्चय में मानवतावाद का सत्य रूप प्रतिपादित है और एक सौहार्दपूर्ण समाज का चित्रण है। हमारे जीवन में नैतिक, भौतिक, लौकिक और अलौकिक श्रेष्ठता होनी चाहिए। मनुष्य एक बौद्धिक प्राणी है, जिसमें आत्म–ज्ञान की उपलब्धि

की शक्ति है। मानव प्रकृति के गुह्य भेदों का ज्ञाता, रहस्यों का अन्वेषक, मूल्यों एवं प्रतिमानों का निर्धारक तथा समाज–व्यवस्था का संस्थापक है। प्राकृतिक रूप से और अपने स्वभाव से वह सुख और आनन्द की इहलौकिक और पारलौकिक सुविधाओं को प्राप्त करने के लिये सतत् प्रयत्यनशील रहा है। इसी कारण वह अंधकार और अज्ञान के आवरणों को भेद कर ज्ञान और विज्ञान का विश्लेषक और प्रणेता बन गया है। मानव यदि अपने और विश्व के लिये शान्ति चाहता है उसे अपने आपको अवश्य जानना चाहिए। मानव कला और सौन्दर्य के प्रति अभिरूचि रखता है और ऐसे ही साहित्य और दर्शन का निर्माण करता है, जो उसकी भावना और कल्पना को साकार करे। मनुष्य ही मूल्यों का निर्माता और उपभोक्ता है। मानव–चिन्तन अब एक विशेष जाति और राष्ट्र तक ही सीमित न रहकर विश्वव्यापी हो गया है। मानव–कल्याण के चिन्तन का आशावादी दृष्टिकोण सुकरात से गैबरिल मार्शल तक और वेदों से गाँधी तक मिलता है, यही मानवता की पूर्णता का साधन है। उसके पराक्रम और साहस का प्रतीक है। यद्यपि विश्व में आज सर्वत्र निराशा व्याप्त है, किन्तु आशावादिता मानव को निरन्तर आगे बढ़ाती रहती है।

मानवीय अन्तः–प्रकृति, अवसाद एवं वैदिक विचार

कु. रमा राजपूत
शोधछात्रा, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मानसिक स्वास्थ्य या इच्छाशक्ति के लिए मानसिक रोगों से दूर रहना आवश्यक है। मानसिक रोग 'अवसाद' से बचने के लिए विभिन्न परिस्थितियों में औषधीय चिकित्सा आवश्यक है, किन्तु साथ ही मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि अनिवार्य है। अथर्ववेद में मानसिक रोगों को मन और चित्त द्वारा दूर करने का संकल्प किया गया है। शुक्लयजुर्वेद के शिवसंकल्पसूक्त में मन के साक्षात् शिवस्वरूप होने की प्रार्थना की गयी है। मन का ऐसा स्वरूप जो सर्वविद्ध अनिष्टों, दुःखों, व्याध्यिों आदि से रहित हो तथा जिसमें किसी भी प्रकार के अमंगल की संभावना न हो। अथर्ववेद के पृथिवी–सूक्त में प्रार्थना की गयी है, कि जिस मातृभूमि की चार दिशाएँ हैं, जिसमें उद्यमशील तथा कृषक उत्पन्न हुए हैं, जो प्राणधारियों तथा गमनशील का पालनपोषण करती है, वह मातृभूमि हमें गौओं तथा सात्त्विक अन्नादि से पोषित करें। श्रम के लिए प्रेरित करते हुए ऐतरेय ब्राह्मण के शुनःशेप अथवा हरिश्चन्द्रोपाख्यान में कहा गया है कि श्रमशील मनुष्य के चरण पुष्पवत् हल्के हो जाते हैं, शरीर अथवा आत्मा में बुद्धि संभव होती है, फलतः मनुष्य आरोग्य हो जाता है। सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है क्योंकि श्रम पापनाश में महत्वपूर्ण है। अथर्ववेद में कहा गया है कि वृद्धावस्था में शिथिलता आने पर भी वचनों द्वारा दूसरों के मार्गदर्शक के रूप में श्रमशील रहना चाहिए।''

दिव्यशक्तियों से प्रार्थना की गयी है, कि पृथ्वी और अंतरिक्ष की देवशक्तियाँ मेरा कल्याण करें। बुद्धिह्रास को दूर करने के लिए यजु. में प्रार्थना की गयी है कि जो मेधा देवगणों तथा हमारे पितरों द्वारा पूजित है, उसी मेधाग्नि से आज हमें मेधावान् बनायें। अथर्ववेद का संपूर्ण 'मेधा–जनन सूक्त' मेधावृद्धि को समर्पित है। अथर्ववेद में मन को दृढ़ तथा इच्छाशक्ति को प्रबल करने के लिए कहा गया है कि 'तुम डरो नहीं, तुम मरोगे नहीं, मैं तुम्हें कष्टरहित बनाता हूँ। मैं तुम्हारे अंगों से अंगज्वररूप रोग को बाहर कर रहा हूँ'। इस प्रकार वेद विभिन्न मन्त्रों के माध्यम से रोगी में आत्मबल की वृद्धि करते हैं तथा वर्तमान समय में मृत्यु स्वरूप अवसाद का समाधान प्रस्तुत करते हैं, जिनका आचरण स्वस्थ व्यक्ति को रोगी होने से बचाता है तथा रेागी व्यक्ति को रोगमुक्ति दिलाता है।

वैदिक आचार

डॉ. रमन रानी

अध्यक्षा, संस्कृत–विभाग, एम. एम. एच. कॉलेज, गाज़ियाबाद (उ. प्र.)

सद्वृति से उद्भूत भाव सदाचार को उत्पन्न करते हैं। ऋग्वैदिक आर्यों की वृत्तियाँ सदाचार की ओर उन्मुख दिखाई देती हैं। सत्य, अहिंसा, दान आदि में आर्यों की निष्ठा, अभिव्यक्त होती है। 'सत्येनोत्तम्भिता भूमि' (ऋ. 10/85/1)। सत्य से ही दिन प्रकाशित होता है, सूर्योदय होता है और जल निरन्तर गति से प्रवाहित होता है। सत्यवादी के लिये सत्य नौका का काम करता है (ऋ. 7/104/3)। अंहिसा सदाचरण का महत्त्वपूर्ण सोपान है। इसके लिये विचारों और आचरण में सरलता होना आवश्यक है 'मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः (ऋ. 1/90/6)'। ऋग्वेद में दुष्ट वृत्ति वाले, हिंसक, वैरी, मांसभक्षी व कटुभाषी राक्षसों के विनाश हेतु प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि जैसे अग्नि में फेंके हुए चरु अदृश्य हो जाते हैं, वैसे ही इन राक्षसों का विनाश करो (ऋ. 6/16/29)। सामञ्जस्य और सौहार्द की भावना पदे–पदे प्रतिष्ठित है। कुकृत्यों के प्रति लज्जा और प्रायश्चित स्वरूप उस आसीम शक्ति से पापों के प्रति क्षमा याचना की गई है।

Nature and Human Behavior on the Basis of *Madhu-Vidya* of *Brihadaranyaka-Upanisad*

Mr. Ramanath Pandey

Oriental Institute, The M. S. University of Baroda, Gujarat

I have argued in this study, on the basis of *Madhu-vidya* of *Brihadaranyakopanisad* (BU), that human being and nature are closely intertwined with each other. A minute observation of the natural phenomena, as described in BU, reveals that Vedic people were identical with nature. The intimacy of man with nature is expressed with great pleasure in Upanisadic literature. In both cases, either in the sense of human behavior or environment, effects of nature on human life and effects of human action on nature have intrinsic relation. There are mainly three categories of environmental problems: natural disasters, technological catastrophes, and long-term environmental degradation.

The main cause of all these problems is human behavior and understanding towards other natural phenomena such as humans, animals, plants, other organisms and natural resources. According to medical sciences, everything existing in this universe, matter or energy, living or nonliving, is medicine if properly used, so it is very important to save or conserve them properly. Therefore, there is a need of proper awareness towards all natural phenomena. The present paper highlights the ecological crisis in the context of, caused by present age of globalization, and suggests that there is a need of awareness towards protection of biological resources under the perspective of Vedic vision as depicted in *Brihadaranyakopanisad*.

.

सामवैदिकचिन्तने प्रकृतिमानवयोः सम्बन्धः

डॉ. रामराजउपाध्यायः

निदेशकः पौरोहित्यप्रशिक्षणपाठ्यक्रमस्य, श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठे, नवदेहली

सा च अमश्चेति ततः साम्नः सामत्वम् इत्यस्मिन् सा अर्थात् सा ऋचा अमः नाम स्वरो वर्तते। अर्थात् यस्या ऋचाया उपरि स्वरारोहणं कर्तुं शक्यते तस्याः नाम साम्न ऋचा विद्यते। सामविषये प्राप्यते–ऋच्यधूढं साम गीयते। परञ्चैवं प्रश्नं समुदेति यत् सामवेदस्यावश्यकता किमासीत्। यतोहि सामवेदे ऋग्वेदस्य मन्त्रास्सन्ति। तत्र पुथक् पञ्चसप्ततिर्मन्त्रा एव सामवेदस्य विद्यते। सामवेदे ऋग्वेदस्य ते एव मन्त्राः संगृहीतास्सन्ति ये गीयमाना विद्यन्ते। यतोहि ऋचाणां गायनेन देवानां प्रसादयित्वा पुरुषार्थचतुष्टयानामाप्तिः क्रियन्ते। सामवेदे यत्किमपि चिन्तितमस्ति तत्सर्वं प्रकृतिमानवसंबंधात्मकमेव। मानवस्य जीवनं प्रकृतिरुपर्याधारितं विद्यते। मानवस्य संरक्षणार्थं प्रकृतेः संरक्षणं चरमपरमोद्देश्यम्।

इदानीं जनाः वदन्ति पर्यावरणं प्रदूषितं भवति। पर्यावरणं किमस्तीति प्रकृतेः स्वरूपमपरं विद्यते। यावत् प्रकृतेः संरक्षणं न क्रियते तावत् पर्यावरणं शुद्धं भविष्यतीत्यनौचित्यचिन्तनं प्रतिभाति। विपुलवेदविद्याविचारकाः वदन्ति प्रकृतिमानवसंबंधः वेदस्य प्रमुखप्रतिपाद्यमस्ति। जैमिनीयोपनिषद्ब्राह्मणे सृष्ट्युत्पत्तिः प्रजापतिद्वारा अभवतेति लिखितमस्ति। सृष्टिप्रक्रियायां आकाशान्तरिक्षसलिलादीनां वर्णनमादौ जैमिनीयब्राह्मणे प्राप्यते। आपो वै अन्तरिक्षमित्यनुसारेण अन्तरिक्षाकाशयोः भावैक्यं मन्यते। जैमिनीयोपनिषदि प्राप्यते अन्तरिक्षे सूर्यः पृथ्वीश्च कथं स्थिता वर्तेते। समाधाने सत्येते सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितास्सन्ति। सृष्टिप्रक्रियायामदितिरेव प्रकृतिः विद्यते। आदित्यश्चन्द्रः विद्युतजलमन्तरिक्षादि पञ्चप्रकृतयस्सन्ति। सृष्टौ यत्किमपि जातत्वं जनितत्वञ्च विद्यते तत्सर्वं प्रकृतिरेव। जैमिनीयोपनिषद्ब्राह्मणानुसारेण प्रकृति पुरुषयोः व्याप्य व्यापकं संबंधः विद्यते।

वास्तुशास्त्रानुसार भूमि–चयन एवं भूमि–परीक्षणः मयमत के विशेष परिप्रेक्ष्य में

रीता गुप्ता

पीएच. डी., विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

'स्थापत्य–वेद' को अथर्ववेद का उपवेद कहा गया है । वही स्थापत्य वर्तमान में वास्तुशास्त्र के नाम से विख्यात है । प्रारंभ से ही भारतीय परम्परा में वैश्विक दृष्टिकोण को अपनाया गया है तथा प्रकृति को केवल भोग्या न समझकर उसके साथ मातृवत् व्यवहार किया गया है क्योंकि समस्त जगत एक ही परम तत्त्व की अभिव्यक्ति मात्र है–'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । (तैत्तिरीयोपनिषद् ३/१/१)।' इसलिए भारतीय परम्परा में संपूर्ण जगत को अन्तर्सम्बन्धित स्वीकार किया गया है क्योंकि हम जो कुछ भी करते हैं चाहे वह भवन–निर्माण कार्य हो अथवा कोई अन्य कार्य, उससे संपूर्ण परिवेश प्रभावित होता है । अतः भारतीय परम्परा में विकास समाज, प्रकृति एवं पर्यावरण को दृष्टिगत रखते हुए हुआ। परन्तु विगत तीन शताब्दियों से जिन विचारों ने पश्चिमी जन–मानस के साथ–साथ पूर्व के जन–मानस को भी प्रभावित किया है उसका विकास कापरनिकस, गैलीलियो, कैपलर, फ्रांसिस बेकन, रेने देकार्त एवं न्यूटन के शोध कार्यों के परिणामस्वरूप हुआ । यहाँ प्रकृति के साथ मातृवत् व्यवहार की अपेक्षा उसका मनचाहा उपभोग किया जाने लगा तथा प्रकृति पर विजय प्राप्त करना ही मनुष्य का एकमात्र लक्ष्य समझा जाने लगा । इस प्रकार इनके द्वारा प्रस्तुत किये गए विचारों ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर अपना प्रभाव प्रक्षेपित

किया। इसी एकाङ्गिक दृष्टिकोण को आधार बनाकर भवन इत्यादि का निर्माण कार्य सम्पन्न होने लगा, जिसमें प्रकृति के साथ सामञ्जस्य की उपेक्षा की गई तथा केवल मनुष्य के भौतिक विकास को दृष्टिगत रखते हुए प्रकृति के प्रतिकूल निर्माण कार्य होने लगा। अतएव वर्तमान में आवश्यकता इस बात की है कि प्राचीन काल में प्रचलित वास्तुविद्या को आधार बनाकर निर्माण कार्य सम्पन्न हों। वास्तुशास्त्र पञ्चमहाभूतों से निर्मित प्राणी के जीवन में इन महाभूतों से निर्मित वातावरण के साथ सामञ्जस्य स्थापित करने को सर्वोच्च प्राथमिकता देता है । अतः प्रस्तुत शोधपत्र में वास्तुशास्त्रानुसार भूमि–चयन एवं भूमि–परीक्षण के विविध अङ्गों यथा–भूमि के प्रकार, शुभ एवं अशुभ भूमि के लक्षणों तथा भूमि–चयन की विविध विधियों को प्रस्तुत किया जाएगा; जिससे मानव प्रकृति के अनुकूल भवन–निर्माण कार्य सम्पन्न कर सके ।

Understanding *Manas* (*Antah-Prakriti*) : Ancient Solution for Modern Problems

Dr. Renuka Rathore

Lecturer, Deptt. of Sanskrit, Govt. PG College, Chimanpura, (Rajasthan)

As *Manas* or mind is the centre of human growth today, in ancient period also *Manas* was the core of the thought process and an important method to understand the complex human nature. Today meditation has become a house-hold name. This is the most effective way to channelize the mind and to explore the true nature of our being even in this modern era. Veda itself means knowledge, thus every scripture that propagate knowledge is extension of Veda or Vedic wisdom. Knowledge may be regarded as the most fundamental aim of human consciousness. From gross to subtle, consciousness has many levels. *Chandogyopanishad* verse 6/5/1-4 says that whatever food we consume, it affects at three different levels. The gross part of the food becomes excreta, the middle part becomes flesh and the subtlest part becomes mind. Similar process takes place in water too, it is also divided into three parts; the gross part becomes the bones, the middle part becomes marrow and the subtlest part becomes speech. Thus the food becomes mind, the water becomes *Prana* and the luster or *Tejas* becomes *Vak*. Out of these three, *Vak* can be taken as gross body, *Prana* can be called the subtle body and *Manas* or mind is the causal body. Gita also presents a chain of causes, which is not as detailed as that of Upanishads but on the same line, it also declares that all creatures belongs to *Anna* (3/14-15).

The problems of war and peace, environmental degradation, misuse of scientific and technological advancement, mechanical and dehumanizing hugeness of structures of organization and governance, breakdown of the value systems, downward pull of the unbridled search for wealth and pleasure and of exploitation and domination demand effective solution. It is for this reason that Sri Aurobindo has stated that the secret concealed in the Vedas, when entirely discovered, will be found to formulate perfectly that knowledge and practice of a divine life to which the march of humanity after long wanderings in the satisfactions of the intellect and the senses must inevitably return.

Change regarding Food Practices in India from Vedic Times to Modern Times

Dr. Richa Sikri
Asstt. Prof. in History, M.L.N.College, Radaur (Haryana)

Food which we eat is essential for all living beings. It is the vital source of energy as well as of nourishment of our body, mind and spirit. Without food nothing can sustain for long. As man is born from food (*Taittiriya* Upanishad, *Brahmavalli*, 1 /1) so we are what we eat. We like to eat according to our nature and our nature is made up of three *gunas Sattva*, *Rajas* and *Tamas* so we like to eat food of these three categories accordingly. In recent times our food habits have been changed drastically. Markets are full of junk food in form of noodles, pizzas, burgers, French fries, fried chicken and cold drinks. Many international food chains like McDonald's, KFC, Pizza hut, Dominos etc. are a craze among people. This junk or fast food creating health hazards in the society as this food is full of trans-fat, spicy, extra salty and oily. Due to the consumption of this food on regular basis people are facing heart diseases, obesity and diabetes. As this food belong to *Tamas* category so crimes and negativism is increasing in society day by day.

नारी का आदिस्वरूप : वाक् सूक्त के विशेष सन्दर्भ में

श्री सन्तोष पाण्डेय
शोधार्थी

भारतीय समाज आदिकाल से मातृसत्तात्मक रहा है। वस्तुतः किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृति, नारी की स्थिति, प्रतिष्ठा, शक्ति, एवं योग्यता आदि से ही प्रतिष्ठित होती है। भारतीय परम्परा में नारी का सर्वप्रथम स्वरूपदर्शन ऋग्वेद के 10वें मण्डल के 125वें सूक्त, वाक् सूक्त से प्राप्त होता है। इसमें वाक् नारी का एक सर्वशक्तिमती देवी के रूप में वर्णन किया गया है। उसको ब्रह्म की शक्ति के रूप में देखा गया है। वह सब देवताओं की प्रेरणा शक्ति है। वह सम्पूर्ण देवों में श्रेष्ठ है और रुद्र, वसु, आदित्य तथा विश्वेदेवों के साथ विचरती है– 'अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि अहमादित्यैरुत विश्वेदेवैः (ऋचा 1)'। यह सूक्त 'अहं ब्रह्मास्मि' इस दार्शनिक सिद्धान्त का बीजभूत है। आत्मज्ञान से मानवीय विकास इतना अधिक हो सकता है, इसका यह पुष्ट प्रमाण है। अतः इस शोधपत्र का यही उद्देश्य है कि आज नारी अपने शक्ति को पहचाने और अपनी स्थिति, प्रतिष्ठा, शक्ति, और योग्यता को स्थापित करे।

वातावरण–शुद्धि में वैदिक मन्थन

कु.शारदा गौतम
शोधच्छात्रा, विशिष्ट संस्कृताध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्ववि., दिल्ली

ज्ञान, कर्म और उपासना के लिये प्रसिद्ध ये वैदिक ग्रन्थ विश्व की सभ्यता और संस्कृति का मूल है। प्राचीन ऋषि आन्तरिक और बाह्यशुद्धता से भलीभांति परिचित थे। वे जानते थे कि शरीर के भीतर और बाहर से शुद्धि ही उनके दीर्घ जीवन का आधार है। इसके बिना जीवन अल्पकालिक होगा।

धर्म–अर्थ–काम और मोक्ष की प्राप्ति स्वस्थ शरीर के द्वारा ही हो सकती है 'शरीरमाद्यं एव खलु धर्मसाधनम्'। वे पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश की सत्ता और इनके गुणों के बारे में भी वर्तमान विज्ञान से अधिक ज्ञानवान् थे। इन्हीं तत्त्वों के विज्ञान के आधार पर उन्होंने अग्नि तत्त्व के सार को समझा और यज्ञ की परिकल्पना की।

आज जल, वायु, अन्न, मिट्टी कुछ भी शुद्ध नहीं है। प्रदूषण इतना बढ़ गया है कि अमरीका, कनाडा जैसे देशों में, तेज़ाबी वर्षा एक प्रमुख समस्या बन गई है। समस्त संसार पर्यावरण–प्रदूषण से चिन्तित है। अपने कर्त्तव्य का सुचारू रूप से पालन करती हुई प्रकृति वायु के शोधन में अवश्य महत्त्वपूर्ण योगदान करती रही है, अन्यथा अब तक वायुमण्डल इतना प्रदूषित हो गया होता कि श्वास लेना दूभर हो जाता। अग्निहोत्र उस महान् प्रभु द्वारा रचाए गए इस महान् प्राकृतिक यज्ञ का ही एक रूप है। इसके द्वारा वायु की दुर्गन्ध नष्ट होकर सुगन्ध फैलाती है। वेद में यज्ञ को वायु की शुद्धि का हेतु माना गया है– 'वसोः पवित्रामसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्त्रधारम्'। शास्त्रकारों ने प्रतिदिन यज्ञ करने का विधान किया है। मनु (2/103) ने यज्ञ न करने वालों को दण्ड का भागी माना है। यजुर्वेद (1/2) भी यज्ञ का त्याग न करने का स्पष्ट आदेश देता है। प्रस्तुत शोधपत्र में वातावरण के सन्दर्भ में वेद की उपादेयता पर विशद विवेचन किया जायेगा।

संस्कृत साहित्य में जल–संरक्षण की अवधरणा एवं वर्तमान कालिक समाधान

डॉ. शशि शर्मा

दौलत राम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वैदिककालीन मनीषियों ने प्रकृति को माता तथा प्राकृतिक शक्तियों को देवता स्वरूप माना है।

वैदिक चिन्तन के अनुसार 'पञ्चस्वन्तः पुरुष आविवेश तान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि' (यजु. 23/52) अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश, इन पांचों पर पुरुष आधरित है तथा पांचों तत्व भी पुरुष पर आधरित हैं। पर्यावरण एवं प्रदूषण की प्राचीन अवधारणा, आधुनिक धारणा से भिन्न नहीं थी। भूमि को प्रदूषण से बचाये रखने के लिए तथा पर्यावरण संतुलन बनाने के लिए (वृक्षारोपण) की आवश्यकता की ओर संकेत प्राप्त है (अथर्व. 5/28/5)। नदी के जल प्रदूषण के विषय में ऋग्वेद (7/50/4) में कहा गया है 'सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु' अर्थात् सभी नदियाँ प्रदूषण रहित हो।

मनुष्य के विकास–यात्रा के क्रम ने पर्यावरण को प्रभावित किया है। यह प्रभाव सकारात्मक और नकारात्मक दोनों रूपों में हुआ है। सम्पूर्ण विश्व में धरती की भाग केवल एक चौथाई तथा शेष तीन चौथाई भाग अथाह जल ही जल है। जल की सहनशीलता तो देखिए कि अरबों जीव–जन्तुओं को जीवन देने के अतिरिक्त धरती के करोड़ों मनुष्यों तथा पशु–पक्षियों के जीवन की भी रक्षा करता है– 'जल है तो प्राण है, जल नहीं तो कुछ भी नहीं'। आर्य संस्कृति नदियों के तटों को तीर्थों के रूप में पूजती थी तथा उसके जल में पवित्राता की भावना से स्नान करती थी। दुनिया के लगभग डेढ़ अरब परिवारों पर इस बात की जिम्मेवारी आती है कि जल चाहे जैसा और जितना भी उपलब्ध है, उसकी पवित्राता से रक्षा की जाये। जल–समस्या के उपाय तीन स्तरों में सम्पन्न होने चाहिए– स्वच्छ पानी को प्राप्त करने का उपाय करना, अस्वच्छ जल को शुद्ध करवाना तथा पर्यावरण में होने वाले प्रदूषणों को रोकना ताकि जल प्रदूषित न हो पाये। हमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर जल–संरक्षण सम्बन्धी कार्यक्रमों में परस्पर सहयोग करना होगा क्योंकि यह किसी एक देश की सीमा विशेष तक सीमित समस्या नहीं है।

ऋग्वेद में पक्षी : प्रेरणा के प्राकृतिक प्रतीक

प्रो. शशि तिवारी

पूर्वाचार्या, मैत्रेयी कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली एवं महासचिव, वेव्स (WAVES)

ऋग्वेद में पक्षियों का विवरण वैदिक ऋषियों की सूक्ष्म निरीक्षण–शक्ति का द्योतक है। श्येन, सुपर्ण, गृध, हंस, मयूर, कपोल, उलूक, शुक, चक्रवाक, चाष, किकिदीनि, हारिद्रव, खर्गला, तार्क्ष्य, कपिञ्जल आदि बाइस पक्षियों का उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है। इसके अतिरिक्त कुछ दूसरे नाम जैसे तित्तिर आदि बाद के वैदिक ग्रन्थों में मिलते हैं। पक्षियों का उल्लेख अधिकतर प्रेरणा, प्रतीक अथवा उपमान के रूप में हुआ है। पक्षियों के प्रति प्राचीनतम दृष्टिकोण का यह विश्लेषण मानवीय जीवन में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका का दिग्दर्शन कराता है।

वैदिक यज्ञो में समाहित पर्यावरण संवर्धन–क्षमता

डॉ. शिखा मिश्रा

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, चौ. चरण सिंह पी.जी. कॉलेज, इटावा (उ. प्र.)

भारतीय अन्तरतम का सम्पूर्ण ज्ञान तथा बर्हिजगत की सुरम्य प्राकृतिक छटा की मनोरम झॉकी के लिए जब तक वैदिक चिन्तन द्वारा रसास्वादन नहीं किया जाता, तब तक यह ज्ञान अपूर्ण ही रहता है। हमारी वैदिक संस्कृति, यज्ञ प्रधान रही है। हमारी जीवनचर्या की समस्त क्रियाएँ – विवाह, जन्म, मृत्यु आदि सभी यज्ञ पर ही आधारित है। सम्पूर्ण विश्व में जो सृजन, निर्माण और विकास की अविरल धारा बह रही है तथा मन, प्राण और भूत का जो निरन्तर संयोग–वियोग हो रहा है, वही यज्ञ है। ये यज्ञ मनुष्य और प्रकृति के बीच सेतु बनाते हैं। मनुष्य यज्ञ के माध्यम से प्रकृति से सम्बन्ध स्थापित करके उसकी शक्तियों का उपयोग करने की क्षमता प्राप्त करता है। वेदों में प्रकृति को देवी के रूप में प्रतिष्ठापित किया है। पर्यावरण का वेद में अच्छादन के अर्थ में प्रयोग हुआ है, क्योंकि जल, वायु, भूमि व सजीव–निर्जीव के परसपर सम्बन्ध से ही चारो ओर का जीवमण्डल आच्छादित रहता है। अतः पर्यावरण और जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। पर्यावरण के प्रमुख घटक पञ्चमहाभूतों के समवाय से शरीर की रचना हुई है। सम्पूर्ण जगत् का भौतिक अस्तित्व पाँच मूलतत्वों से मिलकर बना है। पाँचों तत्व मिलकर अलग–अलग स्तर पर वैश्विक यथार्थ का निर्माण करते है।

गत सहस्रो वर्षों से जल, वनस्पति और प्राणियों में एक ऐसा सम्बन्ध स्थापित है, जो पर्यावरण को सन्तुलित बनाये रखता है तथा एक दूसरे के पूरक पदार्थो का निर्माण करता है, लेकिन हम अपनी उच्चाकांक्षाओं तथा आधुनिक सुविधाओं को जुटाने के प्रयास में पर्यावरण में स्थापित सन्तुलन को बिगाड़ते जा रहे है। उस असन्तुलन पर्यावरण की सुरक्षा, वायुमण्ल की पवित्रता, विधिक रोगों का नाश, शारीरिक और मानसिक उन्नति तथा रोग निवारण के कारण दीर्घायुष्य की प्राप्ति यज्ञ के द्वारा ही होती है। यज्ञ के द्वारा वायुमण्डल में ऑक्सीजन तथा कार्बन–डाई–ऑक्साइड का सन्तुलन बना रहता है। समुंद्रन्थन के पश्चात् पर्यावरण को शुद्ध करने के लिए राजा दक्ष ने सर्वप्रथम यज्ञ का आयोजन किया था– ' यत् पुरुषेण हविषा देव यज्ञमतन्वत्'।

मानव और प्रकृति के अन्तःसम्बन्ध के परिप्रेक्ष्य में वेद में वर्णित सविता

डॉ. श्यामदेव मिश्र

सहायकाचार्य, ज्योतिष, मु.स्वा.पी., रा.सं.सं., दिल्ली

प्रकृति व मानव पर जैसा चिन्तन वेदों मे है उस स्तर का चिन्तन आज तक विश्व के किसी भी साहित्य में उपलब्ध नहीं है। अग्नि, वायु, जल, सूर्य, सन्ध्या, पृथिवी, नदी इत्यादि के विविध स्वरूपों की, देवता के रूप में प्रतिष्ठा इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि, भारतीय प्रकृति के प्रति कितने संवेदनशील थे। प्रकृति से इस घनिष्ठ सम्बन्ध ने न केवल तत्कालीन समाज को संवेदनशील, संयमी, सहिष्णु व स्वस्थ बनाया अपितु चिन्तन के उस धरातल पर स्थपित किया जहाँ से मानव ने ऐहिक के साथ–साथ पारलौकिक अभ्युदय के नए–नए मार्गों, सोपानों का अनुशीलन किया। वैदिक ऋचाओं में प्रकृति का वर्णन अत्यन्त मार्मिक ढंग से मानवीय आधार पर किया गया है। वेदों मे प्रकृति के तत्त्वों यथा – सूर्य, अग्नि, जल, वायु, इत्यादि की देवता के रूप में प्रतिष्ठा है। इन प्राकृतिक देवताओं मे सर्वाधिक चिन्तन द्युस्थानीय देवताओं का है। वस्तुतः देवता सम्बन्धि धारणा का आधार ही आकाश की दीप्तिमान शक्तियाँ थी क्योंकि 'देवता' शब्द दिव् धातु से बना है, जिसका अर्थ है– प्रकाश करना, द्योतित होना।

द्युस्थानीय देवताओं मे आदित्यगण, सूर्य तथा सौर देवताओं के रूप मे सविता, विवस्वान्, पूषा, मित्र इत्यादि का प्रमुखता से वर्णन है। यद्यपि पुराणों तथा ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थों में आदित्य, सूर्य, सविता, विवस्वान् इत्यादि सभी सूर्य के ही पर्याय के रूप में प्रयुक्त हैं। सूर्य के बारह नामों से अर्ध्य देते समय उच्चार्यमाण ये सभी शब्द (आदित्याय नमः, पूष्णे नमः, सावित्रे नमः, विवस्वते नमः, मित्राय नमः, भानवे नम, रवये नमः इत्यादि) इस बात का प्रमाण हैं। किन्तु वेदों में ये सभी अलग–अलग देवताओं के रूप में प्रतिष्ठित हैं। प्रस्तुत शोधपत्र द्युस्थानीय देवता सविता के स्वरूप–विवेचन से सम्बन्धित है। ऋग्वेद के सौर देवताओं मे सविता सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। ऋक् 5/81/4 की व्याख्या करते हुए सायण ने सविता की स्थिति सूर्य के उदय से पूर्व मानी है 'उदयात् पूर्वभावी सविता। उदयास्तमयवर्ती सूर्यः'। किन्तु यास्क सविता का काल कुछ और ही मानते हैं। उनके अनुसार आकाश में जब पूर्णतया इतना प्रकाश व्याप्त हो जाता है कि सूर्य–किरणें नभोमण्डल में विलुप्त हो जाती हैं तब वह समय सविता का होता है 'तस्य कालो यदा द्यौः अपहततमस्का आकीर्णरश्मिर्भवति'। प्रातःकालीन सूर्य से सम्बन्धित होने के कारण सविता का सुवर्ण के रंग से विशेष सम्बन्ध है। उसे हिरण्याक्ष (1/35/8), हिरण्यबाहु (1/35/10) हरिकेश (10/139/1) इत्यादि कहा गया है। सविता मनुष्य को कर्म करने हेतु प्रेरित करते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत शोधपत्र मे सविता के वैदिक स्वरूप का विवेचन करते हुए जन सामान्य से उसके नित्य सम्बन्ध को स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

Environmental Wisdom in Ancient India

Mr. Shyam Sunder Sharma

University of Delhi, Delhi

The ancient Indic heritage had already provided a spacious spiritual home for the environmental ethos. In the West, the term 'ecology' was coined only in the latter half of the 19th century from the Greek word Oikos, meaning 'home'. But India has, throughout trackless centuries, provided an ample expanse of friendly space for an open and ongoing discourse of ideas. The Jain, Vedic and Buddhist traditions established the principles of ecological harmony centuries ago - not because the world was perceived as heading for

an imminent environmental disaster or destruction, nor because of any immediate utilitarian exigency, but through its quest for spiritual and physical symbiosis, synthesized in a system of ethical awareness and moral responsibility. This affirmative view of the inviolable sacred space in human consciousness is integral to the Vedas and the Upanishads. On it rests the Vedic vision of a world filled with the purity of the spiritual environment and the sanctity of environmental spirituality and morality. The severely exacting discipline of truth, harmony and rectitude, based on a conception of cosmic and comprehensive peace as envisioned in the famous Vedic Hymn of Peace. The spiritual, ethical, individual and collective dimensions of human life constitute a continuum, encompassing the whole of the Indic heritage and transcending all segments and fragments. The Vedic, Upanishadic, Jain and Buddhist traditions perceived this and together built an enduring spiritual, intellectual and cultural foundation for an environment-friendly value system and a balanced lifestyle.

मानव और पर्यावरण : वैदिक चिन्तन – आधुनिक संदर्भ में

डॉ. स्नेहलता यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, चौ. चरण सिंह पी.जी.कालेज, हेंवरा, इटावा

एवं

डॉ. अवधेश श्रीवास्तव

असिस्टेंट प्रोफेसर, बी.एड./एम.एड. विभाग, चौ. चरण सिंह पी.जी.कालेज, हेंवरा, इटावा

हमारे धर्मशास्त्रों में सृष्टि की रचना के पाँच प्रमुख तत्व माने गये हैं। जो क्रमशः क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर हैं। मानव की लालची प्रवृत्ति ने इन पाँचों तत्वों का इस कदर दोहन कर डाला है कि विश्व का शायद ही ऐसा कोई क्षेत्र बचा हो जहाँ प्राकृतिक आपदायें न आयी हों। पर्यावरण की इस विनाशलीला को रोकने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति सन् 1986 में पर्यावरण शिक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया तथा इसे सामान्य स्तर से प्रारम्भ करके विश्वविद्यालय स्तर तक निर्धारित कराया गया है।आज के विघटित हो रहे पर्यावरण को सुधारने तथा उसे और विघटित होने से बचाने के लिए पर्यावरण–शिक्षा ही एक मात्र ऐसी प्रक्रिया है जिसे अत्यन्त विश्वास से प्रयोग में लाया जा सकता है, क्योंकि पर्यावरण–शिक्षा का मुख्य उद्देश्य पर्यावरण की जागरूकता का विकास करना तथा पर्यावरण की समस्याओं के प्रति मानव के अन्दर संवेदनशीलता को विकसित करना है। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि स्वच्छ पर्यावरण ही जीवन को सुखी, सम्पन्न एवं आनन्दमय बनाता है। हमें पर्यावरण–शिक्षा के कार्यक्रमों की सफलता में अपना सक्रिय योगदान देना चाहिए, क्योंकि पर्यावरण–शिक्षा अन्ततः हमें 'पर्यावरण की गुणवत्ता' और 'जीवन की गुणवत्ता' देने वाली है। अतः यह वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासांगिक है ।

Vedic Eco-Philosophy for Peace & Sustainability : Towards 21st Century

Dr. Subhash Chandra

International Coordinator, WWA- World Without Anger, Kathmandu, Nepal

The large scale exploitation of nature, population growth, accelerated development of productive forces, the ever increasing destruction of natural resources for human

comfort has lead to depletion and degradation of natural environment bringing in a dangerous ecological imbalance in the human nature & environment nature. The world is in confusion and human beings are driven by the power of egocentric behavior. The present world is faced with many urgent problems - such as social, political, economical, environmental and cultural problems. The environmental crisis is an outward manifestation of a crisis of mind and spirit. Peace and the survival of life on earth as we know are threatened by human activities due to erosion of human values. The root of all our current problems is mind pollution & ecological imbalance between Nature & Human Nature. Limitless exploitation of natural resources, excessive consumption and luxurious lifestyle is regarded as a great source of ecological imbalance. Human values are eroding at a very fast rate resulting in a decline in the quality of life of the people. At the dawn of the new millennium, what is required most is 'Vedic Eco-Philosophy' to achieve Peace & Sustainability in 21st century.

Yoga and Spirituality are important features of Vedic knowledge, which are in use even today for peace & sustainability. The objective of this paper 'Vedic Eco-Philosophy for Peace & Sustainability : Towards 21st Century' is to achieve Holistic Environmental Excellence through Vedic Eco-Philosophy & Vedic wisdom. The paper tries to explore the Vedic eco-philosophy & Wisdom for self transformation to bring Harmony between Nature & Human Nature and also for building the world as one family i.e. 'Vasudheva Kutumbkam'.

वैदिक प्रकृति चिन्तन

डॉ. सुधीर पाठक

असि. प्रो. संस्कृत विभाग, चौ. चरण सिंह पी. जी., कालेज हेंवरा, इटावा (उ. प्र.)

हमारी सभ्यता, आचार–विचार, धर्म तथा दर्शन–सब वेद की ही देन है। सहस्रों वर्षों से वेद अक्षुण्ण रूप में हमारे लिए परम प्रमाण रहा है। वैदिक ज्ञान के माध्यम से ही प्रकृति का ज्ञान संभव है। जड़ प्रकृति की अपेक्षा सुव्यवस्थित चेतनामय जीवन में यथार्थसत्ता की अभिव्यक्ति अधिक प्रचुर मात्रा में होती है और चेतन प्राणियों में भी मानव समाज में सबसे अधिक मात्रा में अभिव्यक्ति होती हैं। इस जगत् में पौधे, औषधियाँ और वृक्ष हैं एंव अन्यान्य पशुजगत् भी हैं, वह उनके अन्दर आत्मा को क्रमिक रूप में विकसित होते हुये जानता है, क्योंकि पौधों में और वृक्षों में केवल शक्तिधारक रस ही दिखाई देता हैं, जबकि जीवधारी प्राणियों में चेतना दिखाई देती है। हम इस वैदिक प्रकृति पर चिन्तन करते हैं कि वही यथार्थसत्ता लक्षित होती है। एक तारे में ,पत्थर में , देह में एवं एक मिट्टी के ढेले में भी ,तो भी जीवित प्राणियों में यह जड़ प्रकृति की अपेक्षा अधिक पूर्णता के साथ लक्षित होती है। जिसके कारण अपने–आप में सन्तुष्ट पशु की अपेक्षा मनुष्य का बौद्धिक क्षेत्र की अपेक्षा धार्मिक क्षेत्र में विकास अधिकतर होता हैं इस आत्मानुभूति एंव आत्मपूर्णता की प्रक्रिया में सबसे निम्न श्रेणी में पृथिवी है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है– 'पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार भी– इस प्रकार यह आठ प्रकार से विभाजित मेरी प्रकृति है। यह अष्ट प्रकार के भेदोंवाली तो अपरा अर्थात मेरी जड़ प्रकृति है और हे महाबाहो! इससे दूसरी को, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता हैं, मेरी जीवरूपा परा अर्थात चेतन प्रकृति जान।' इस उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रकृति के बारे में ,वेदों में ,गीता में एवं अन्य शास्त्रों में मुख्य रूप से चिन्तन किया गया है।

मानव कल्याणार्थ वैदिक वाङ्मय में निहित पर्यावरण शोधक तत्त्व

डॉ. सुनीता जायसवाल

विभागाध्यक्षा, संस्कृत, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चकिया, चन्दौली, (उ. प्र.)

मानव प्राकृतिक पर्यावरण में रहते हुए अनेकानेक अनुक्रियाएँ करता है और प्राकृतिक पर्यावरण की शक्तियों का उपयोग करते हुए अपनी छाप छोड़ता है। अथर्ववेद में जल, वायु और औषधियों को पर्यावरण संघटक तत्त्व बताया गया है। चूँकि ये तत्त्व भूमि को आवृत्त किये हुए है इसलिए 'छन्दस्' है तथा अनेक नाम व रूप के कारण 'पुरुरूप' है। ऋग्वेद में कहा गया है कि मनुष्य को ईश्वर प्रदत्त अनेक उपहारों में एक अक्षय धन पृथिवी भी है, जिसमें रत्न, पेट्रोल, कोयला आदि धन है। वेदोक्त पर्यावरणशोधक उपायों को अपना कर हम विविध प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं का निराकरण करने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

वास्तुशास्त्र एवं पञ्चमहाभूतों का अन्तःसम्बन्ध

कु. सुनीता कुमारी

पीएच.डी. (शोध–छात्रा), संस्कृत, विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सम्पूर्ण प्रकृति में पञ्चमहाभूत एक दूसरे के नियमगत आधारों पर सम्बद्ध है तथा पृथ्वी और इसके प्राणियों में विशेष प्रकार की समानता यह है कि इन दोनों की ही उत्पत्ति पञ्चमहाभूतों से हुई है जिसमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश एक निश्चित मात्रा में रहते है। वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों के अनुसार पञ्चमहाभूतों के विधिवत् उपयोग से बने आवरण में पाँच भौतिक तत्वों वाले प्राणी की क्षमताओं को विकसित करने की शक्ति अपने आप ही स्फूर्त हो जाती है। कठोपनिषद् में कहा गया है कि कोई वस्तु चाहे कितनी भी सूक्ष्म अथवा स्थूल हो उनका निर्माण पञ्चमहाभूतों से ही हुआ है। वास्तुशास्त्र भी ब्राह्मण्ड में व्याप्त प्राकृतिक शक्तियों एवं पञ्चमहाभूतों के साथ तालमेल करने की प्रविधि एवं सिद्धान्तों को प्रतिपादित करता है। यही पञ्चमहाभूत वास्तुशास्त्र को घटित करने में सहायक है।

वास्तुशास्त्र ब्राह्मण्ड में सर्वत्र व्याप्त एवं सृष्टि की विनियमक अनेक विविध प्रसंगों में सार्थक प्रयोग की दिशा सुलझाता है। पृथ्वी पर सूर्य की किरणों का प्रभाव, पृथ्वी का चुम्बकीय हवाओं की दिशा एवं उनका प्रभाव आदि कुछ ऐसे तथ्य है, जिनका वास्तुशास्त्र में पूरा ध्यान रखा जाता है। वास्तुशास्त्र ही पञ्चमहाभूतों से निर्मित वातावरण के साथ उसका सामञ्जस्य स्थापित करने को सर्वोच्च प्राथमिकता देता है तथा यह जीवन के सन्तुलन के लिए भूमि एवं भवन का सन्तुलन भी प्रतिपादित करता है। अतः कहा जा सकता है कि इन्हीं शक्तियों से सामञ्जस्य बनाना इन्हीं के अनुकूल चलते हुए अपने रहन–सहन को व्यवस्थित करने में ही निःसन्देह जीवन की सुखशान्ति निहित होती है।

Vedic Approach to Environment in the Light of Modern Environmental Ethics

Ms. Surabhi Verma

Ph.D Student, Department of Sanskrit, Punjab University, Chandigarh

The Indian religious traditions are intertwined with equally disparate cultural, social, linguistic, philosophical and ethical systems that have developed over a vast history, compounded with movement of peoples, foreign interventions, and internal transformations in structures and identities experienced over time. The Vedas deal with knowledge, the knowledge of all sorts. They cover knowledge both physical and spiritual.

They are source of all knowledge especially the Vedic views revolve around the concept of nature and life. The visions of the beauty of life and nature in the Vedas are extremely rich in poetic value. Perhaps nowhere else in the world has the glory of dawn and sun-rise and the silence and sweetness of nature, received such rich and pure expression. The symbolical pictures projected there remain close to life and nature. The most authoritative among the four Vedas is called the *Rigveda*. Each Vedic verse has one or more sages *(Rishis)* and deities *(Devatas)* associated with it. Generally, *Rishis* are supposed to be the recipient of knowledge revealed in the verses and *Devatas* are supposed to be the gods in whose praise verses are revealed. In modern Sanskrit, the word *Paryavarana* is used for environment, meaning which encircles us, which is all around in our surroundings. But in the *Atharvaveda* words equivalent to this sense are used; such as *Vritavrita, Abhivarah, Avritah, Parivrita* etc. Vedas are said to be revealed to Indian seers. Thoughts presented in the Vedas are also perceived to be wholesome and all time respectable. The man-nature relationship has been very closely reflected in these texts. These texts are theoretical and practical reflections of Indian seers. This paper is an effort to illustrate the glimpse about the environment presented in the Vedic treasure in the light of present day context of environmental ethics.

मनुस्मृति में सप्त–प्रकृति चिन्तन : आधुनिक संदर्भ में

कु. सुषमा देवी

पीएच.डी. (शोध–छात्रा), संस्कृत, विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सांख्यकारिका में भौतिक सृष्टि के मूलस्रोत जिसमें सत्त्व, रजस् एवं तमस् – ये तीन प्रधान गुण सन्निविष्ट है, वह प्रकृति है। इसके अतिरिक्त इस शब्द का सम्बन्ध राजा के मंत्री, मन्त्रिपरिषद् व मंत्रालय से है। कुछ ग्रन्थों में यह 'प्रजा' के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। किन्तु मनुस्मृति में मानव एवं समाज के कल्याणार्थ जिस सप्त–प्रकृति को महत्त्व दिया गया है, वह हमारे आस–पास व्याप्त पर्यावरण, पशु–पक्षी, नदी, पहाड़, झरने आदि से सर्वथा भिन्न है। मनुस्मृति में 'प्रकृति' शब्द का प्रयोग राज्य के सात अंग – स्वामी, अमात्य दुर्ग, जनपद या राष्ट्र, कोष, दण्ड एवं मित्र के लिये किया गया है– 'स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोषदण्डौ सुहृत्तथा। सप्त प्रकृतयो ह्येताः सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते।। (मनु., 9/294)'। अन्य धर्मशास्त्रकारों एवं राजनीति–शास्त्रज्ञों ने भी 'प्रकृति' शब्द का यही अर्थ किया है। कार्यात्मक दृष्टि से उक्त सभी अंग महत्त्वपूर्ण है, कोई भी एक–दूसरे से हीन नहीं है, न ही बढ़कर है। अतएव सबकी महत्ता अपने–अपने स्थान पर है। जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अंग–सिर, आँख, कान, मुखादि पृथक्–पृथक् कर्म करते हुए भी परस्पर सुसम्बद्ध रहकर पुरूष को पुरुषत्व प्रदान करते हैं और एक स्वस्थ मानव देह का निर्माण करते हैं, उसी प्रकार सातों प्रकृतियाँ परस्पर सम्बद्ध होकर कार्य करते हुए, एक सुव्यवस्थित राज्य का निर्माण करती हैं। ये सभी अंग एक–दूसरे के पूरक हैं, यदि एक भी अंग दोषपूर्ण हुआ तो राज्य सम्यक् रूप से नहीं चल सकता। अतएव सभी प्रकृतियों के परस्पर संगठित रूप से कार्य करने पर ही राज्य का कल्याण संभव है। मनुस्मृति की व्याख्या में मेधातिथि ने राज्य की प्रकृतियों को आवश्यक ही नहीं माना वरन् उनका समृद्ध होना भी आवश्यक बताया है। राज्य को सुदृढ़, सुस्थिर, सुव्यवस्थित तथा उन्नतशील बनाने हेतु इसकी आवश्यकता है। ये ही व्यक्ति को सुरक्षा, न्याय व धार्मिक अर्थात् भौतिक एवं पारलौकिक प्रगति प्रदान करती हैं।

वर्तमान समय में बढ़ती आवश्यकताओं एवं बदलते परिवेश के साथ उनका स्वरूप बदल गया है। यह सत्य है कि बदलते स्वरूप के साथ प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति हुई है, परन्तु उनमें अव्यवस्था, नैतिक पतन, भ्रष्टाचार जैसी दुष्प्रवृत्तियों ने जन्म ले लिया है, जो इसके वास्तविक

स्वरूप को धूमिल किये हुए है और शनैः शनैः देश को पतन की ओर उन्मुख कर रही हैं। ऐसे में राज्य की ये सप्त–प्रकृतियाँ अपने शुद्ध स्वरूप के साथ आज भी उतनी ही उपादेय या प्रासङ्गिक हैं, जितनी कि तत्कालीन समय में थी।

वैदिक संहिताओं में पर्यावरण–चेतना : आधुनिक परिप्रेक्ष्य में

श्री ठण्डी लाल मीणा

पीएच.डी. (शोध–छात्र), संस्कृत, विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मनुष्य के चारों ओर आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, वृक्ष, वनस्पतियों, नदियों, पर्वतों, पशु, पक्षी आदि प्राकृतिक सम्पदाओं का जो आवरण है, वहीं पर्यावरण कहलाता है। इन उपर्युक्त प्राकृतिक तत्वों के संरक्षणार्थ वैदिक ऋषि सदा सजग रहे हैं। वैदिक संहिताओं में भी पर्यावरण सुरक्षा देने वाले बहुत से तत्व है, जो परमपिता की महती देन है। इन संरक्षणों से मनुष्य तभी तक लाभ प्राप्त कर सकता है, जब तक इनका उचित उपयोग करता है।

आज के वैज्ञानिक युग में विज्ञान के प्रसार, प्रोद्यौगिकी एवं तकनीकी के विकास, मनुष्य के सुख साधनो के संग्रह की प्रवृत्ति, अत्याधुनिक साधनों के प्रति आकर्षण तथा जनसंख्या वृद्धि आदि अनेक कारकों की देन है– निरन्तर बढ़ता प्रदूषण जो पर्यावरण को निरन्तर दूषित कर रहा है। आज पृथ्वी, जल, वायु, आकाश आदि सभी दूषित है। जिनसे समस्त चराचर जगत् का अस्तित्व विद्यमान है। वर्तमान समय में पर्यावरण समस्या के अन्तर्गत इसकी स्वच्छता व शुद्धता मुख्य चुनौतियाँ है, जिसका जन्मदाता स्वयं मनुष्य ही है। अतः यह स्पष्ट है कि पर्यावरण प्रदूषण की गति यदि इसी प्रकार बढ़ती रही तो यह निश्चित है कि जीवन नष्ट जो जाएगा तथा अनेकानेक रोगों से ग्रस्त होकर मानव अकाल में ही काल कलवित होता हुआ अपना अस्तित्व खो देगा। इसलिए हमेशा इस वेद की ऋचा को ध्यान में रखते हुए व्यवहार करे– 'जीवेम शरदः शतम्, परयेम शरदः शतम्:'। अतः प्रकृति की उपासना भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण अंग है जो मानव को विनाश करने से रोकती है। वेदों के मनुष्य को अप्रत्यक्ष रूप से इनका संरक्षण करने के लिए बार–बार प्रेरित किया गया है। निःसन्ह वह हमारे लिए अत्यधिक प्रेरणाप्रद, शिक्षाप्रद, एवं समाज को जागरुक रखने के लिए अतिमहत्त्वपूर्ण है।

वैदिक–संहिताओं में ऋतु–मीमांसा

श्री उमेश कुमार

शोधछात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं परन्तु वेदों के रचना–स्थल के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं। वैदिक–संहिताओं में वसन्तादि षड़ृतुओं का वर्णन स्पष्टतः प्राप्त है। वर्तमान में भारत वर्ष ही ऐसा देश है, जहाँ वसन्तादि–छः ऋतुओं का प्रतिवर्ष आवागमन दृष्टिगोचर होता है। अतः वैदिक–संहिताओं में ऋतुओं के अध्ययन से वेदों का रचना–स्थल बृहत्तर–भारत ही होने का संकेत प्राप्त होता है। ऋग्वेद–संहिता में 'ऋतु' शब्द का प्रयोग एक वचनान्त एंव बहुवचनान्त (ऋतुना, ऋतुभिः) दोनों रूपों में प्राप्त होता है। सामान्यतः भारत वर्ष में वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर इन छः ऋतुओं को स्वीकार किया जाता है। ऋग्वेद–संहिता में केवल चार ही ऋतुओं का नामोल्लेख है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के सुप्रसिद्ध पुरूष–सूक्त में वसन्त, ग्रीष्म और शरद ऋतुओं का वर्णन है। डा0 कुसमलता द्वारा लिखित पुस्तक 'पुरूष–सूक्त का विवेचनात्मक अध्ययन' के अनुसार देवों ने जो पुरूष रूप हवि से यज्ञ का विस्तार किया, जिसमें वसन्त ऋतु और आज्य का, ग्रीष्म और समिधा का तथा शरद् और हवि का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। उनके अनुसार आज्य स्नेह का प्रतीक है, वसन्त भी स्नेह का प्रतीक है, इसी प्रकार समिधा शुष्कता का प्रतीक है, वहीं ग्रीष्म भी शुष्कता का प्रवर्तक है। तथैव जो कार्य देव–यज्ञ में हवि का है, वही कार्य

संवत्सर–यज्ञ में शरद् का है। संवत्सर की सफलता शरद् ऋतु में देखी जाती है। वसन्त में जो बोया गया था, उसे काटने का समय आ गया है। शरद् ऋतु का फल द्रविण है। 'शरद् हविः' कहने का अभिप्राय भी यही है कि हवि उसी पदार्थ को बनायें जो पुनः लौट सके।

वैदिक कालीन संगीत में प्रकृति एवं मानव

डॉ. वन्दना चौबे

एसोसिएट प्रोफेसर, नृत्य विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली (राजस्थान)

भारतीय संगीत का प्राचीनतम् रूप वेद में उपलब्ध होता है। वैदिक आर्य प्रकृति के अति निकट सम्पर्क में रहते थे। उनके अधिकांश देवता उनकी सहज जिज्ञासा एवं सरल स्वभाव के ही परिणाम हैं। वेद में आर्यों की प्राकृतिक शक्तियां धीरे–धीरे देवताओं का रूप ग्रहण करती हुई दिखलाई पड़ती है। वैदिक आर्य जिस प्राकृतिक वातावरण में रहते थे, जिन प्राकृतिक घटनाओं को देखते थे और जिन प्राकृतिक पदार्थों का उपयोग करते थे, उन्हीं सबको वैदिक आर्यों ने अपना देवता स्वीकार किया। उन्हीं की स्तुति, वेद के सूक्तों में स्थान–स्थान पर उन्होंने की है। उनके द्वारा देखे गये प्राकृतिक तत्व सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, विद्युत, वर्षा आदि ही देवता के रूप में परिणित हुए। आगे चलकर देवताओं को भी उच्चशक्ति सम्पन्न मानवाकृति के रूप में देखा जाने लगा। इन देवताओं के साथ संगीत (गायन, वादन, नृतन) का घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रकृति तथा मानव का भी अत्यन्त घनिष्ठ संबंध है। संगीत, प्रकृति तथा मानव इन तीनों का परस्पर अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। मानव की सत्ता, अस्तित्व को बनाये रखने में प्रकृति आधारभूत तत्व है। मानव के स्वार्थी होने के कारण ही आज प्रकृति संकटग्रस्त स्थिति में हैं, प्रकृति का यथोचित संरक्षण न होने से प्रकृति के महत्व को न समझने के कारण मानव जीवन आपदाग्रस्त हो रहा है। प्रकृति का संरक्षण मानव के हाथ में निहित है। संगीत एक साधना है। संगीत एक तप है। संगीत माध्यम है परम तत्व को प्राप्त करने का। संगीत एक अनुभूति है जिसकी प्राप्ति साधना प्रकृति की गोद में, प्रकृति के शांतिमय वातावरण में ही संभव है। इसलिए यदि संगीत की सुरक्षा करना चाहते हैं तो हमें प्रकृति का संरक्षण करना होगा। प्रकृति का संरक्षण होने पर मानव का सर्वतोभावेन संरक्षण स्वतः सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इन तीनों में किसी एक की हानि अन्य के लिए हानिकर है।

औपनिषदिक व्याख्या में प्राकृतिक तत्त्वों का समावेश

डॉ. वेदवती वैदिक

उपाचार्या, संस्कृत, श्री अरबिन्दो कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

छान्दोग्य, बृहदारण्यक, कठ, मुण्ड, प्रश्न आदि उपनिषदों में ऋषियों द्वारा अपनायी गई वैदिक व्याख्या–पद्धति में दृष्टान्त, रूपक, उपमा, आख्यान आदि के माध्यम से अनेक प्राकृतिक तत्त्वों और गतिविधियों का समावेश किया गया है। प्रस्तुत पत्र में उनके अध्ययन का प्रयत्न किया जाएगा।

ऋग्वेदीय प्रमुख सूक्तों में प्रकृति तथा मानव की उत्पत्ति का विश्लेषण

श्री विकास सिंह

शोध छात्र, विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरु विश्वविधालय, दिल्ली

इस शोधपत्र के माध्यम से ऋग्वेद के पुरुष–सूक्त (10.90), हिरण्यगर्भ–सूक्त (10.121) तथा नासदीय सूक्त (10.129) के आधार पर प्रकृति तथा मानव के उद्भव संबंधी विचारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा। साथ ही आधुनिक विज्ञानसम्मत तत्संबंधित विचारों के साथ ऋग्वेदीय सिद्धांतों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त (10.129.1) से ज्ञात होता है कि प्रारंभिक अवस्था में अर्थात् प्रकृति तथा मानव की उत्पत्ति से पूर्व प्रलय दशा में न तो नाम, रूपादि रहित

अवस्था थी, और न नामरूपात्मक अवस्था थी, न अन्तरिक्ष अथवा कोई लोक था, न आकाश था, जो सबसे पर या ऊपर है। ऐसी स्थिति में क्या आवृत्त किये हुए था अथवा आवरण था अर्थात् क्या अवशिष्ट था? वह कहाँ था? किसके संरक्षण में था? क्या उस समय अथाह गहरा जल अथवा शून्य था? नासदीय सूक्त (10.129.4) से ही सर्वप्रथम सृष्ट्युद्भव संबंधी संकल्पनावाद के सिद्धांत का ज्ञान होता है, जिससे पता चलता है कि प्रकृति का उद्भव किस प्रकार हुआ था। हिरण्यगर्भ सूक्त के प्रथम मंत्र में बताया है कि हिरण्यगर्भ सबसे पहले उत्पन्न हुआ, वह उत्पन्न होते ही समस्त प्राणियों का एक मात्र स्वामी था। उसने अन्तरिक्षलोक, द्युलोक और पृथिवीलोक को धारण किया। तब ऐसे देव को छोड़कर किस देव को हम हवि प्रदान करें? पुरुष सूक्त में विराट पुरुष से सृष्टि की उत्पत्ति बतलाकर मानव के उद्भव के बारे में भी बतलाया गया है। यहाँ समाज के उद्भव के अवयव सिद्धांत का विवेचन किया गया है।

वैदिक ऋचाओं में पर्यावरण संरक्षण की अभिव्यञजना

श्री विश्वजीत विद्यालङ्कार

शोधछात्र, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

जिस संस्कृति के मानने वालों की आयु का 3/4 भाग वन में ही व्यतीत होता हो, जहाँ संचार एवं तकनीकी प्रधान इकीसवीं सदी में भी पीपल, बरगद, बेल और तुलसी जैसे वृक्षों का पूजन होता हो, प्रकृति के सम्पूर्ण अवयव दैववत् हो, भूमि एवं नदियाँ जननी की उपाधि से अलङ्कृत हो, जहाँ वेदों की ऋचाओं के गायन से वायुमण्डल को संगीतमय बनाकर पर्यावरण को सरसता से भरकर अग्निहोत्र द्वारा अपवित्र एवं विषाक्त गैसों के दुष्प्रभाव को नष्ट किया जाता रहा हो, जिस समाज में रोग से ग्रसित होकर कदाचित् ही कोई मृत्यु को प्राप्त होता हो, उनसे अधिक प्रकृति के महत्व को कौन जान सकता है। जिस संस्कृति के प्राण वैदिक–मन्त्रों में पर्यावरण के आंशिक क्षति की सम्भावना भी अभिव्यक्त न हो उसमें पर्यावरण के संरक्षण की भावना को ढूँढना आकाश कुसुम के समान निरर्थक ही होगा। वैदिक मन्त्रों का पर्यावरण के प्रति सन्देश द्रष्टव्य है– 'शन्नो वातः पवतां शन्नस्तपतु सूर्यः शन्नः क्रनिकद्देवः पर्यन्यो अभिवर्षतु (शुक्ल यजु॰ 36.10)'।

वैदिक ऋचाओं में प्रकृति के प्रति अभिव्यक्त विचारों के अनुशीलनोपरान्त यह कहना तो अतिशयोक्ति होगी कि साधरण–सा भी प्रदूषण उस समय में नहीं होता होगा, किन्तु उनकी पर्वत, सागर, वनस्पति, जल, थल, गगन, पवन के प्रति सचेष्टता दर्शनीय एवं अनुकरणीय है। निष्कर्षतः

वैदिक ऋचाओं में अभिव्यञ्जित पर्यावरण संरक्षण एवं सन्तुलन की उत्कृष्ट दशा को महाकवि माघ की यह सूक्ति सार्थकता प्रदान करती है– कि 'पैर को कीचड़ में सानकर पिफर धेने से अच्छा है कि पैर में कीचड़ लगने ही न दिया जाए।'

WAVES - Governing Council

PRESIDENT:
Prof. Ram Karan Sharma
(Former Vice Chancellor of Varanasi& Darbhanga Sanskrit Universities

VICE-PRESIDENT:
Prof. Lallan Prasad
(Former Prof. of Business Economics, Delhi University) Noida

TREASURER:
Dr. (Mrs.) Sushma Choudhary
(Lecture in Sanskrit, Dept. of Sanskrit, KNC, University of Delhi),

GENERAL SECRETARY:
Dr. (Mrs.) Shashi Tiwari
(Former Asso Prof. -Sanskrit, University of Delhi),
54 Saakshara Apartments, A-3 Paschim Vihar, New Delhi-63
011-2526-5237(R), 0981.069.0322 (M),shashit_98@yahoo.com

PUBLIC RELATIONS:
Mr. Y.K. Wadhwa
(Former Business Executive, New Delhi)

JOINT SECRETARIES:
Dr. Aparna Dhir, Dhir.aparna@gmail.com
Dr. Umesh K. Singh, umeshvedic@gmail.com

MEMBERS on BOARD:
1.Shri Prashant Bharadwaj (Principal Consultant, IT Vision360, Gurgaon, Haryana)
2. Dr. (Mrs.) Dharma (Former Asso. Prof. of Sanskrit, Laxmibai College, Delhi Uni.)
3. Dr. (Mrs.) Savita Gaur(Former Prof. Gujarat University, Surat)
4. Shri H. L. Kohli (Former Director, Delhi Administration, CAD, Delhi)
5. Shri Subodh Kumar (Industrialist and Scientist, Ghaziabad, UP)
6. Shri Dinesh Misra (Former Director, Bhartiya Jnanpeeth, Noida)
7. Dr. (Mrs.) Asha Lata Pandey (HoD, Sanskrit, Delhi Public School, Delhi)
8. Prof. V. Kutumba Sastry(Former.V-C, Rashtriya Sanskrit Sansthan)
9. Prof. Bhu Dev Sharma (Former Professor , Clarks Atlanta University, Atlanta, USA)
10. Dr. Ganesh Dutt Sharma(Former Principal, LP College, Sahibabad)
11.Prof. Radha Vallabh Tripathi (V-C, Rashtriya Sanskrit Sansthan, Delhi)
12.Prof.YamaniBhushanTripathi (Prof. of Medicinal Chemistry, B H U, Varanasi)
13.Dr. (Mrs.) Vedawati Vaidik (Associate Prof., Sanskrit, SAC,Delhi University)
14. Shri Vidya Sagar Verma (Former Ambassador of India, New Delhi)

Publications of WAVES

[Publisher: Pratibha Prakashan, 7259/20, Ajendra Market, Premnagar, Shakti Nagar, Delhi-110007]

1. CONTEMPORARY WORLD ORDER: A VEDIC PERSPECTIVE
(Ancient Indian Literary Heritage-I) (Proceedings of the 7th India Conference held at Pondicherry)
Editior : Dr. Shashi Tiwari, **Sub-Editor:** Dr. Alka B. Bakre; **Edition** : 2009, **PRICE** : Rs.1,500/-

2. HARAPPAN CIVILIZATION AND VEDIC CULTURE
(Ancient Indian Literary Heritage-II) (Proceedings of the 12th India Conference held at Delhi)
Editior : Dr. Shashi Tiwari, **Edition** : 2010 , **PRICE** : Rs.1,200/-

3. CREATION AND EXISTENCE IN INDIAN TRADITION (In English and Sanskrit)
(Ancient Indian Literary Heritage-III vol)(Proceedings of the 13th India Conference held at Delhi)
Editor : Dr. Shashi Tiwari, **Edition :** 2011,**PRICE :** Rs.995/-

4. Bhartiya parampara me Sristi Avam Sthiti (In Hindi)
(Ancient Indian Literary Heritage-IV vol)(Proceedings of the 13th India Conference held at Delhi)
Editor : Dr. Shashi Tiwari, **Edition :** 2011,**PRICE :** Rs.1250/-

Wider Association for Vedic Studies, (WAVES), Regd.

(A Multi-disciplinary Academic Society)
&
(An Affiliate of World Association for Vedic Studies, USA)

Registered in Delhi under Societies Registration Act XXI of 1860; Registration Number- 50959
Website- www.waves-india.com
Office Address: 54, Saakshara Apartments., A-3 Paschim Vihar, New Delhi – 110063
Email: shashit_98@yahoo.com , info@waves-india.com ; Phone: (011) 25265237

Membership Form

Name: _____ _____ _____ _____
(Mr./Ms./Dr./Prof.) (First Name) (Middle Name) (Last Name)

Address (Home):_____

Address (Office):_____

Tel: _____ (Home); _____(Office).

Fax: _____ E-mail: .....

Membership Fee: Enclosed is my payment of Rs. _____ for Life/ Annual membership of WAVES
.

DD/ Cheque no.---------- Bank…….

DD/Cheque should be in favour of " **Wider Association for Vedic Studies**"

Declaration: I agree with the 'Aims and Objectives' of the Association, support the same and want to participate in the activities of the Association.

....
Signature of the Applicant Date

Introduced by :

1. _____ _____ _____ _____
Name Status with WAVES Signature Date

2. _____ _____ _____ _____
Name Status with WAVES Signature Date

_____

You may get in touch with:
Dr. Shashi Tiwari, General Secretary, WAVES
Ph: 09810690322; shashit_98@yahoo.com
Or any member of Board, GC, WAVES for more information.